भक्तामर-कथा।



श्रीवीतरागाय नमः ।

स्वर्गीय ब्रह्मचारी रायमल्लकृत

संस्कृत

भक्तामर-कथा ।

का

हिन्दी-रूपान्तर ।

कर्त्ता—

स्व० पं० उदयलालजी काशलीवाल ।

प्रकाशक—

जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,

हीराबाग, पोष्ट गिरगाँव, बम्बई ।

चतुर्थ संस्करण । जेष्ठ सुदी, वीर नि० सं० २४५६ । मूल्य सवा रुपया ।
क्रम सं० ७५०० मई, सन् १९३० ई० । पक्की जि० १॥=) रु०

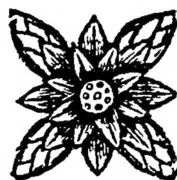
प्रकाशक—

बिहारीलाल कठनेरा जैन,

मालिकः—

जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,

हीराबाग, गिरगांव–बम्बई।



मुद्रकः—

रा. रा. रघुनाथ रामचंद्र बखले,

बम्बई वैभव प्रेस, सँढहर्स्टरोड,

गिरगांव–बम्बई।

प्रस्तावना।



भक्तामर एक स्तोत्र है। वैसे तो इसमें सभी तीर्थंकरोंकी स्तुति की गई है, पर स्तोत्र-रचयिता आचार्यने अपनी प्रतिज्ञामे लिखा है कि, 'मैं आदि जिनेन्द्रकी स्तुति करता हूँ'। इसीसे इस स्तोत्रका नाम 'आदिनाथ-स्तोत्र' होने पर भी इसका प्रारंभ जो 'भक्तामर प्रणत मौलि' आदि शब्द द्वारा किया गया है, इस कारण इसका नाम 'भक्तामर' भी पड गया है। स्तोत्र बहुत ही सुन्दर और मर्मस्पर्शी शब्दोंमे रचा गया है। पद-पद और शब्द-शब्दमें भक्ति-रसका झरना बहता है। जैनसमाजमें इसकी जो प्रतिष्ठा है वह तो है ही, पर इसे जो अन्य विद्वान् देख पाते हैं, वे भी इसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर कविकी शतमुखसे तारीफ करने लगते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह स्तोत्र बहुत ही श्रेष्ठ है।

भक्तामरस्तोत्र कई जगह प्रकाशित हो चुका है, पर आज हम इसे एक नए ही रूपमें प्रकाशित करनेको समर्थ हुए हैं, और हमें विश्वास है कि जैनसमाज हमारे इस परिश्रमका आदर भी करेगा।

जैनसमाजमें भक्तामरस्तोत्र मन्त्र शास्त्रके नामसे भी प्रतिष्ठित है। कुछ विद्वानोंका मत है कि इसके प्रत्येक श्लोकमें बडी खूबीके साथ मन्त्रोंका भी समावेश किया गया है। हो सकता है, पर कैसे? इस बातके बतलानेको हम सर्वथा अयोग्य हैं। कारण हमारी मन्त्र शास्त्रमें बिल्कुल ही गति नहीं है। पर इतना कह सकते हैं कि ऐसी बहुतसी पुरानी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं, जो सौ-सौ दो-दो-सौ वर्षकी लिखी हुई हैं और उनमें मन्त्र वगैरह सब लिखे हुए हैं। मन्त्रके साथ ही उन लोगोंकी कथाएं भी हैं, जिन्हें मन्त्रोंका फल प्राप्त हुआ है। ऐसी कथाएँ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों समाजोंमें पाई जाती हैं। दिगम्बर समाजमें इस विषयकी दो ग्रन्थकर्त्ताओंकी दो पुस्तकें वर्तमानमे उपलब्ध हैं। एक तो शुभचन्द्र भट्टारककी और दूसरी रायमल्ल ब्रह्मचारीकी। इनके सिवा और भी होंगी, पर वे हमारे देखनेमें अभी तक नहीं आईं। हमारा विचार शुभचंद्रकृत भक्तामरकथाके प्रकाशित करनेका था। कारण उनकी कथाएँ

वहुत विस्तारके साथ लिखी गई है। पर हमें मूल पुस्तक प्राप्त नहीं हो सकी, इसलिए हमने फिर रायमल्लकी वनाई हुईका ही हिन्दी रूपान्तर करके पाठकोंकी भेंट किया है।

रायमल्ल कव हुए, वे कौन थे; और कव उन्होंने इस पुस्तकको रचा? इस विषयका स्वयं उन्होंने पुस्तकके अन्तमें परिचय दिया है। इसलिए यहाँ पर उस विषयमें कुछ लिखना उचित नहीं जान पड़ता।

इसकी कथाओंके पढ़नेसे सर्वसाधारणकी इच्छा होगी कि हम भी इसके मंत्रोंको सिद्ध कर सव सिद्धियाँ प्राप्त करें, लक्ष्मीको अंकशायिनी वनावें, संसारमें सम्मान लाभ करें, और सवको अपना अनुगामी वनावें, आदि। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे मंत्र-सिद्धिसे उक्त सव वातें प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु उन्हें पूर्णतः ध्यानमें रखना चाहिए कि मंत्र-शास्त्र जैसा ही उपयोगी है वैसा ही अत्यन्त कष्ट-साध्य भी है। वल्कि सर्व-साधारणके लिए तो उससे लाभ उठाना असंभव है। मंत्रोंके सिद्ध करनेके लिए मानसिक और शारीरिक वलकी पूर्णता होनी ही चाहिए। साधकोंके मनमें कोई वुरे विकार, वुरे भाव और अपवित्रता नहीं होनी चाहिए। इसमें चंचल मनको एक जगह खूव दृढ़ रोके रखनेकी वहुत ही जरूरत है। विषय-लालसा, काम-वासना वगैरहसे मनको कभी विचलित नहीं होने देना चाहिए। उसे सदा संयत—अपने वशमें रखना चाहिए। उसी तरह शरीर भी अत्यन्त सहनशील होना चाहिए। क्योंकि मंत्र साधनेवालोंके सिर पर हर समय अनेक उपद्रव, अनेक कष्ट, अनेक आपदाएँ घूमती रहती हैं। जिसने उन पर विजय प्राप्त नहीं कर पाया फिर वह कहींका नहीं रहता। शास्त्रोंमें अनेक उदाहरण ऐसे मिलेंगे कि मंत्र साधनेसे कई विक्षिप्त हो गए, कई भय खाकर मर मिटे। इसका यही कारण है कि उनमे मानसिक और शारीरिक वल नहीं था। जैन-शास्त्रका तो सिद्धान्त है कि जिसमें ये दोनों वल नहीं वह न योगी हो सकता है और न भोगी। उसका जन्म निरर्थक है। इस पुस्तकको देखकर अनेक सज्जन इस विषयमें सफलता लाभ करनेकी दौड़ लगानेका यत्न करेंगे। हम उन्हें यह नहीं कहते कि वे अपनी कार्यसिद्धिके लिए यत्न न करें; पर इसके पहले वे इतना जरूर देखलें कि उनमें मानसिक और शारीरिक वल कितना है? उनकी पूर्णता है या नहीं? इसके वाद यदि वे अपनेको सव तरह समर्थ पावें तो निडर होकर इस विषयमें आगे वढ़ें। और यदि अपनेको समर्थ न देखें तो दिनरातके अभ्यास द्वारा अपने शरीर और मनको शक्तिशाली वनाकर फिर इसमें हाथ डालनेका

यत्न करें। अन्यथा अपने मनसूबेको छोड दें। बीचकी स्थितिवाले मत्र शास्त्रसे लाभ उठा सकेंगे, इसका हमें सन्देह है। बल्कि आश्चर्य नहीं कि लाभके बदले हानि उनके पल्ले पड जाय और फिर उससे पीछा छुटाना भी उनके लिए कठिन हो जाय। हमारा विनयपूर्वक अनुरोध है कि पाठक हमारी इस प्रार्थना पर विशेष ध्यान दें।

इसके सिवा मत्र शास्त्रके सम्बन्धमे एक और बात विशेष ध्यान देनेकी है। वह यह कि मत्रोंकी आराधना बहुत शुद्धताके साथ होनी चाहिए। अक्षर वगैरहके उच्चारणमे ह्रस्व, दीर्घ आदिका पूर्ण विचार रखना चाहिए। क्योंकि इस विषयमें भगवान समन्तभद्रका मत है कि —

' न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदना।'

अर्थात् अक्षर-रहित मत्र विषकी पीडाको नष्ट नहीं कर सकता। विष-पीडा यहाँ सामान्य समझना चाहिए। आचार्यका आशय है कि अशुद्ध मत्रसे कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता।

इस पुस्तकमे हमने मत्रोंके साथ साधन विधि और यत्र भी लगा दिये हैं। यत्र क्रमवार सबके अन्तमें लगे हैं। साधन-विधि मत्रोंके साथ है। मत्रविधिके सम्बन्धमे विशेष यह कहना है कि कई मत्रोंकी तो इसमे पूर्ण विधि है और कई मत्रका केवल फल मात्र लिखा है। हमारे पास जितनी प्रतियाँ थीं, उन सबमें एकसा पाठ था। इसका कारण शायद यह हो कि कई श्लोकोके मत्रोंका फल परस्परमें मिलता है, इस-लिए हो सकता है कि ऐसे मत्रोंकी साधन विधि एक ही हो, और इसी लिए दुबारा फिर उसके सम्बन्धमें नहीं लिखा गया हो। जो हो, ऐसे सामान्य विधिवाले मत्रोंका जाप्य प्रतिदिन तो देना ही चाहिए। इसके सिवा किसी दूसरी प्रतिमें विशेष हो तो उसे सुधार लेना चाहिए। ऐसी विधिवाले मत्र ये हैं--

नं० १४-२०-२५-२७-२८-३०-३१-३५-३८-३९-४१-४२-४३ ४४-४५।

इसके सिवा और भी कुछ मत्र ऐसे हैं जिनके विषयमें केवल १०८ वार ही जाप देनेका लिखकर विशेष विधि छोड दी गई है। इन सब बातोंका खुलासा किसी प्राचीन पुस्तकमें देखना चाहिए। हमें जितनी विधि उपलब्ध हुई उसे हमने लिख दिया है।

हमें यत्रमत्रकी पाँच प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं। इनके सिवा एक कर्णाटक लिपिमें छपी हुई पुस्तक भी हमने मगाई थी, पर वे प्रायः सब ही अशुद्ध थीं। हमसे जहा तक

बना सबकी सहायतासे ठीक करके यह यंत्र-मंत्रोंका संग्रह किया है। हमें विश्वास है कि तब भी बहुतसी अशुद्धियाँ रह जाना संभव है, उन्हें पाठक किसी पुरानी प्रतिसे शुद्ध करनेका यत्न करें।

हम उन सज्जनोंके अत्यन्त उपकृत हैं जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर यंत्र-मंत्रकी पुस्तकें भेजनेकी उदारता दिखाई है।

संस्कृत-कथाओंका रूपान्तर हमने अपनी पद्धति पर ही किया है। आवश्यकतानुसार कथाओंमें कुछ अंश मिलाया है। रूपान्तर शब्दार्थकी प्रधानतासे नहीं, पर भावकी प्रधानता लेकर किया गया है।

अन्तमें झालरापाटन निवासी नवरत्न श्रीयुक्त पं० गिरिधर शर्माके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि उन्होंने मूल भक्तामर पर लिखी हुई अपनी 'हिन्दीभक्तामर' नामक सरस सुन्दर कविताके प्रकाशित करनेकी हमें आज्ञा देकर कृतार्थ किया।

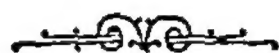
गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधाति सज्जनाः॥

विनीत--

उदयलाल काशलीवाल।

श्रीपरमात्मने नमः।

भक्तामर-कथा।



मंगल और कथावतार।

श्रीवर्द्धमान प्रणिपत्य मूर्ध्ना
दोषैर्व्यपेतं ह्यविरुद्ध-वाचम्।
वक्ष्ये फल तद्रूपमस्तवस्य
सूरीश्वरैर्यत्कथित क्रमेण ॥ १ ॥

क्षुधा, तृषा, रोग, शोक, भय, चिन्ता, राग, द्वेष, मोहआदि दोषोंसे रहित और जिनके वचनोंमें परस्पर विरोध नहीं है, उन श्रीवर्धमान तीर्थंकरको नमस्कार कर भगवान् ऋषभदेवकी स्तुतिरूप भक्तामरस्तोत्रका फल कहा जाता है, जैसा कि उसे पूर्वके ऋषि—महात्माओंने कहा है।

भारतवर्षमें मालवा प्रान्त प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है। उसमें धारा नामकी एक सुन्दर नगरी है। वह सुन्दर सुन्दर महलोंसे युक्त है। उन महलों परकी फडकती हुई ध्वजाएँ बडी शोभा देती हैं। वहाँके लोगोंके मुँहमें सरस्वतीका निवास है—वे अच्छे विद्वान् है। जब चन्द्रमा नगरीके ऊपर आता है तब उसका हरिण चन्द्र-मुखियों द्वारा गाये गये मनोहर गीतोंको सुननेके लिए वहीं ठहर जाता है। कलङ्क-रहित चन्द्रमा तब बहुत सुन्दर दीखने लगता है।

धारा नगरीके राजा भोज संसारमें बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने दान-मानादिसे सारी पृथ्वीको सन्तुष्ट कर लिया है। इसलिए उनका कोई दुश्मन

नहीं है। उनका मंत्री बड़ा बुद्धिमान् है। उसका नाम मतिसागर है। वह जिनभगवान्का बहुत भक्त है।

एक दिन भोजराज सभामें बैठे हुए थे। उन पर चँवर ढुर रहे थे। इतनेमें कालिदास आदि कई पंडित, जो सब शास्त्रोंके अच्छे जानकार थे, राजसभामें आए। उन्हें अपने पाण्डित्यका खूब अभिमान था। वे मंत्र-शास्त्रके भी अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने राजासे कहा-महाराज! हम सुनते हैं कि आपके राज्यमें नंगे साधुओंका बहुत जोर है। वे बड़े विद्वान् समझे जाते हैं। पर वास्तवमें वे ढोंगी हैं और कुछ नहीं जानते हैं। यदि वे कुछ जानते हैं तो उन्हें हम सरीखा कोई आश्चर्य बतलाना चाहिए।

इतना कहकर उनमेंसे कालिदास नामके पंडितने अपने पाँवोंको छुरीसे काट लिये, और कालिकाका आराधन कर, जिसे कि उसने पहलेसे ही साध रक्खा था; फिर उन्हें वैसे ही जोड़ लिये। और इसी तरह भार्गवी नामके पंडितने अम्बिकाकी आराधना द्वारा अपना भग्नोदर रोग दूर किया। माघ नामके पंडितने सूर्यकी उपासना द्वारा कोढ़से झरते शरीरको आराम कर उसे सुन्दर बना लिया। इत्यादि बहुतसी आश्चर्य भरी बातें राजाको दिखला कर उन्होंने कहा-महाराज! हम सब शास्त्रोंके जानकार हैं; मंत्र-शास्त्र पर भी हमारा पूर्ण अधिकार है। ऐसी हालतमें आपके पवित्र राज्यमें विद्वानोंका आदर न होकर ढोंगियोंकी पूजा हो यह कितने कष्टकी बात है! आपको इस पर विचार करना चाहिए।

उन पंडितोंके पाण्डित्य प्रगट करनेवाले वचनोंको सुनकर राजाने अपने मंत्रीसे कहा—तुम अपने गुरुओंको मेरे सामने उपस्थित करो।

यदि वे अपने विद्या-बलसे मुझे कुछ आश्चर्य दिखला सकेंगे तो मै अवश्य उनका सम्मान करूँगा और उन्हें सर्वश्रेष्ठ समझूँगा।

मंत्रीने उत्तर दिया—महाराज! मेरे गुरु सदा आत्म-कल्याणमें लगे रहते है। वे बडे दयालु है। छोटे बडे सब जीवो पर उनकी एकसी दया है, और इसी लिए वे मत्र-तत्रादिके द्वारा किसीको कष्ट देना अच्छा नहीं समझते। पर वे सब जानते हैं। यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है कि वे कुछ अपना प्रभाव दिखलावें, तो अच्छी बात है। मौका मिलने पर मै आपकी आज्ञाका अवश्य पालन करूँगा।

इसी अवसरमें श्रीमानतुग मुनिराज, जो कि अपने निर्मल चारित्रसे ससारको पवित्र कर रहे थे, विहार करते हुए उधर आ निकले। मतिसागर मुनिराजका आगमन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह उनकी वन्दनाके लिए वनमें गया। वहाँ उनके दर्शन कर उसने पवित्र धर्मोपदेश सुना। इसके बाद मुनिराजसे उसने प्रार्थना की कि प्रभो! यहाँके राजा भोज बहुत बुद्धिमान् है, पर वे जैनधर्मसे बिल्कुल अनभिज्ञ है। इसलिए कालिदास वगैरह पडित अपने पाण्डित्यके अभिमानमें आकर सदा जैनधर्मकी निन्दा किया करते हैं। वह मुझसे नहीं सही जाती। आप उसके लिए कुछ उपाय कीजिए, जिससे जैनधर्मकी प्रभावना हो और राजाको जैनधर्म पर विश्वास हो।

मानतुगस्वामी मत्रीका सब अभिप्राय जानकर राजसभामें गये और उन्होंने राजासे कहा-राजन्! जैनधर्मके सम्बन्धमें आपको जो भ्रम है उसे निकाल डालिए। मै सब तरह आपकी समझौती करनेको तैयार हूँ। यह देख, राजाने उनकी विद्याकी परीक्षा करनेके लिए मुनिराजको लोहेकी अडतालीस साँकलोंसे खूब मजबूत जकडवा कर और भीतरके तलघरकी कोठडियोंमें बन्द कर सब पर मजबूत ताले लगवा दिये।

मुनिराजने वहाँ आदिनाथ भगवानकी स्तुतिमें इसी भक्तामरस्तोत्रका रचना प्रारंभ किया। वे जैसे जैसे इसे रचते जाते थे वैसे वैसे उनकी अपार भक्तिके प्रभावसे उनके बन्धन टूटते जाते थे। जब सब बन्धन टूट गये और सब कोठड़ियोंके ताले भी अपने आप खुल पड़े तब अन्तमें केवल हाथोंको वैसे ही बँधे रखकर मुनिराज राजसभामें आ उपस्थित हुए। वे राजासे बोले-राजन्! मैंने तो अपनी शक्तिका तुम्हें परिचय दिया, अब तुम्हारे शहर में भी कोई ऐसा विद्वान पंडित है जो अपनी विद्याके बलसे मेरे हाथोंका बन्धन तोड़ सके? यदि हो, तो बुलवाकर मेरे बन्धन तुड़वाइए।

यह देख राजाने कालिदासआदि विद्वानोंकी ओर इशारा कर बन्धन तोड़नेके लिए उनसे कहा। राजाकी आज्ञा पाकर वे उठे और अपनी अपनी विद्याका बल बताने लगे, पर उनसे कुछ भी नहीं हुआ। यह देख वे बड़े शर्मिन्दा हुए। जब उन्होंने अपनी शक्तिभर बन्धनके तोड़नेका खूब प्रयत्न कर लिया और कुछ नहीं कर सके तब मुनिराजने राजासे कहा-राजन्! इन बेचारोंकी क्या ताकत जो ये इस बन्धनको तोड़ सकें। जो सियालको जीतनेवाले हैं वे सिंहको नहीं जीत सकते। यही हाल इन लोगोंका है जो ये दूसरोंको ठगने और मुग्ध करनेके लिए अपनी माया द्वारा आश्चर्य भरी बातें दिखाया करते हैं और उस-पर बड़ा अभिमान करते हैं। पर इनका यह अभिमान करना झूठा है। इनका अभिमान करना तो तब सच्चा समझा जाता जब कि ये इस बंधनको तोड़ देते। अस्तु; ये लोग यदि इसे नहीं तोड़ सकते तो मैं ही तोड़े देता हूँ। यह कहकर मुनिराजने अपने स्तोत्रका अन्तिम श्लोक रचा। उसका पूरा रचा जाना था कि सबके देखते देखते मुनिराजके हाथोंका बन्धन टूटकर अलग जा गिरा। यह देखकर कालिदास वगैरह पंडितोंको

चडा हतप्रभ होना पडा। साथ ही राजाको भी अपने अविचार पर लज्जित होना पडा। राजा मुनिकी तपश्चर्याके प्रभावको देखकर बहुत खुश हुआ। उसने फिर मुनिकी बडे भक्तिभावसे स्तुति की—कि प्रभो! ससारमें आप बडे भाग्यशाली हैं, मोह-शत्रुके नाश करनेवाले हैं, बडे तपस्वी हैं, ज्ञानी हैं, सत्यवादी है, साक्षात् मोक्षके मार्ग हैं, संसारका सच्चा हित करनेवाले है, शकर है, और क्षमाके सागर हैं, जो अपराधी लोगों पर भी सदा क्षमा करते हैं। नाथ! अज्ञान वश जो कुछ मुझसे अपराध बन पडा है उसके लिए मैं आपसे क्षमाकी भीख मॉगता हूँ। यह कहकर राजा बडे विनीत भावसे मुनिराजके पॉवोंके पास आ खडे हुए। मुनिराजने तब उन्हें धर्मोपदेश दिया। उससे राजाका जैनधर्म पर दृढ विश्वास हो गया। वे मुनिराज द्वारा उपदेश किये व्रतोंको स्वीकार कर उत्तम श्रावक बन गये। इस प्रकार धर्म-प्रभावना कर मुनिराज वहाँसे विहार कर गये।

इसके बाद भोजराजने अपनी नगरीमें बहुतसे जिन मन्दिर बनवाये और उनमें विराजमान करनेके लिए बहुमूल्य सुन्दर जिनप्रतिमायें तैयार करवा कर उनकी बडे उत्सवके साथ प्रतिष्ठा करवाई, पात्रोंको खूब दान दिया। राजाके जैनधर्म स्वीकार करनेसे धर्मकी बडी प्रभावना हुई।

श्रीमानतुगस्वामीके बनाये पवित्र भक्तामरका जो श्रद्धा-भक्तिसे प्रतिदिन पाठ किया करते हैं, वे मनचाही सिद्धिको नियमसे प्राप्त करते हैं। यह भक्तामर-स्तोत्रकी रचनाका कारण है। अब इसके द्वारा जिन जिन लोगोंने फल प्राप्त किया है, उनकी कथाएँ सक्षिप्तमें यहाँ लिखी जाती है।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥
यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

हैं भक्त-देव-नत मौलि-मणि-प्रभाके
उद्योतकारक, विनाशक पापके हैं,
आधार जो भवपयोधि पड़े जनोंके,
अच्छी तरा नम उन्हीं प्रभुके पदोंको—
श्रीआदिनाथविभुकी स्तुति मैं करूँगा;
की देवलोकपतिने स्तुति है जिन्होंकी—
अत्यंत सुन्दर जगत्त्रय-चित्तहारी
सुस्तोत्रसे, सकल शास्त्र-रहस्य पाके ॥

अर्थात् जो नमस्कार करते हुए भक्त देवोंके मुकुटोंमें जड़े रत्नोंकी कान्तिके उद्योतक हैं—बढ़ानेवाले हैं, अर्थात्—जिनके चरणोंकी कान्तिका इतना तेज है कि वह स्वर्गीय रत्नोंकी कान्तिको भी दिपाता है, जो पापरूपी अन्धकारके नाश करनेवाले, और युगकी आदिमें—कर्मभूमिकी प्रवृत्तिके समय संसार-समुद्रमें गिरते हुए जीवोंके आश्रय—बचानेवाले हुए; उन जिन भगवान्के चरणोंको मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक नमस्कार कर मैं प्रथम जिनेन्द्र श्रीआदिनाथ भगवान्की स्तुति करता हूँ, जिनकी कि स्तुति देवोंने—जिनकी कि बुद्धि द्वादशांग और चतुर्दशपूर्वके तत्त्वज्ञानसे बहुत विलक्षण थी—उदार और तीन जगत्के हृदयोंको मुग्ध करनेवाले स्तोत्रों द्वारा की है।

हेमदत्तकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मत्रोकी आराधनासे हेमदत्त सेठको जो फल प्राप्त हुआ उसकी कथा लिखी जाती है। उसे सुनिए—

एक दिन राजा भोज राज-सभामें बैठे हुए थे। इतनेमें कुछ ब्राह्मणोंने आकर उनसे प्रार्थना की कि महाराज! सुना जाता है—भक्तामरका बडा माहात्म्य है, और उसे बुद्धिमान् मानतुंगने पहले बतलाया भी था। पर हमें इससे यह विश्वास नही होता कि वह भक्तामरका माहात्म्य था। क्योंकि मानतुग मत्र-शास्त्र जानते थे, इस लिए सभव है, उन्होने मंत्रकी करामात दिखला कर उसे स्तोत्रकी कह दिया हो, अथवा किसी देवताकी आराधना या किसी औषधि द्वारा ऐसा कर दिखाया हो। क्योंकि यहाँ बहुतसे मंत्र-तंत्रके जाननेवाले नगे साधु इधर उधर घूमा ही करते है। इसलिए हम तब भक्तामरका सच्चा माहात्म्य समझे जब कि कोई दूसरा भी इसके द्वारा वैसा ही चमत्कार बतलावे। ब्राह्मणोंके वचन सुनकर राजाने सभाकी ओर ऑख उठाकर कहा—क्या हमारी नगरीमें भी कोई भक्तामरस्तोत्रका अच्छा जानकार है। उनमेंसे एक मनुष्य बोला कि महाराज! हेमदत्त सेठ भक्तामरके अच्छे जाननेवाले है। वे बडे भद्र, धर्मात्मा और सदाचारी श्रावक है। राजाने अपने नौकरोंको भेजकर हेमदत्तको बुलवाया। हेमदत्त राजाज्ञा पाते ही विलम्ब न कर उसी समय राजसभामें आ-उपस्थित हुए। राजाने उनका उचित सन्मान कर पूछा—क्या आप भक्तामरको, जो कि श्रीमानतुग महाराजका बनाया हुआ है, जानते है। सुना है कि उसकी आपको सिद्धि भी प्राप्त है। कहिए यह बात ठीक है? उत्तरमें हेमदत्तने कहा—महाराज! थोडा कुछ उसके विषयसे मै परिचित हूँ। आप यदि

परीक्षा करना चाहते हैं, तो कृपाकर मुझे तीन दिनकी अवधि दीजिए। हेमदत्तके कहे अनुसार राजाने तीसरे दिन उन्हें खूब मजबूत बाँधकर एक बहुत ही गहरे कुएमें डलवा दिया और निगरानी रखनेके लिए अपने नौकरोंको बैठाकर उन्हें सख्त ताकीद कर दी कि हेमदत्त निकल न जाय।

कुएमें बैठे रहकर हेमदत्तने बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ भक्तामरके दो काव्योंका स्मरण किया। उसके प्रभावसे चक्रेश्वरी देवी प्रगट हुई। उसने हेमदत्तके शरीरके सब बंधन खोल करके उसे खूब गहनोंसे सजाकर बहुत सुन्दर बना दिया। कुएका पानी भी देवीकी कृपासे घुटने प्रमाण हो गया। जिनभगवानके नाम-स्मरणसे जब संसारका कठिन बंधन भी क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है तब उसके सामने ऐसे तुच्छ बन्धनोंकी तो गिनती ही क्या है।

इसके बाद देवीने हेमदत्तसे कहा—महाशय, मैं अब राजाको जरा तकलीफ पहुँचाती हूँ। सो तुम जब भक्तामरके दो श्लोकों द्वारा जल मंत्रकर उसे राजा पर छींटोगे तब मैं उन्हें उससे मुक्त कर दूँगी। यह कहकर देवी राजाके पास गई और राजाको सहसा बीमार करके वह लोगोंसे बोली—"हेमदत्त सेठ यहाँ आकर अपना मंत्रा हुआ जल राजा पर छींटे तो बहुत शीघ्र आराम हो सकता है। इसके सिवा और उपाय करना व्यर्थ है।" देवीके कहे अनुसार हेमदत्त बुलवाये गये। उन्होंने अपना मंत्रा हुआ जल राजा पर छींटा। उसके बाद उन्हें देखते देखते आराम हो गया। यह देख राजा उठकर देवीके पाँवोंमें गिर पड़े और बोले—माँ! क्षमा करो, न जानकर ही मैंने आपका अपराध किया है। उत्तम पुरुष अज्ञानी और बालकों पर सदा क्षमा ही किया करते हैं।

यह कह कर राजाने देवीको प्रणाम किया। देवी राजाको आशिष देकर चली गई।

हेमदत्तका फिर वस्त्राभूषणसे खब सन्मान हुआ। धर्मकी खूब प्रभावना हुई। बहुतोंने जैनधर्म ग्रहण किया और जैनोंकी अपने धर्ममें श्रद्धा खूब दृढ हो गई।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥ ३॥
वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र! शशाङ्ककान्तान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥ ४॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

हूँ बुद्धिहीन फिर भी बुधपूज्यपाद,
तैयार हूँ स्तवनको निर्लज्ज होके।
है और कौन जगमें तज बालको जो—
लेना चहे सलिल-संस्थित चन्द्र-बिम्ब॥
होवे बृहस्पतिसमान सुबुद्धि तो भी,
है कौन जो गिन सके तव सद्गुणोंको।
कल्पान्तवायु-वश सिन्धु अलंघ्य जो है,
है कौन जो तिर सके उसको भुजासे॥

अर्थात् हे देवों द्वारा पूजनीय चरण बुद्धिके न होते हुए भी मैं जो आपकी स्तुति करने चला हूँ, यह मेरी निर्लज्जता है। नाथ बालकको छोड कर और कौन जलमें पड़े हुए चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको हाथोंसे पकडनेकी सहसा इच्छा कर सकता है। अर्थात् मेरा भी यह प्रयत्न बालककी भाँति ही है।

हे गुण-समुद्र! बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् जन भी आपके चन्द्रमा-सदृश मनोहर गुणोंका वर्णन करनेको समर्थ नहीं। (तब मुझ सरीखे अल्पज्ञकी तो बात ही क्या है।) नाथ! प्रलयकालकी वायु द्वारा मगर-मच्छ आदि भयंकर जीवोंका समूह जिस समुद्रमें प्रचण्डता धारण किये हुए है—इधर उधर मुँह बाये लहरें ले रहा है, उसे भुजाओं द्वारा कौन तैर सकता है!

सुमतिकी कथा।

सुमति नामके एक महाजनने उक्त श्लोकोंकी आराधना द्वारा फल प्राप्त किया है। उसकी कथा इस प्रकार है—

भारतवर्षमें अवन्ति नाम एक प्रसिद्ध प्रांत है। वह बहुत सुन्दर, धन-धान्य आदिसे परिपूर्ण और बहुत समृद्धिशाली है। वहाँ एक सुमति नामका महाजन रहता था। वह बेचारा दरिद्री था।

एक दिन उज्जयिनीके वनमें पिहिताश्रवमुनि अपनी शिष्यमंडलीको लिए हुए आए। उनका आना सुनकर नगरीके सब लोग उनकी वन्दना करनेको गए। साथ ही सुमति भी गया। वहाँ धर्मोपदेश सुन कर उसे बहुत आनंद हुआ। इसके बाद उसने मुनिराजसे कहा—नाथ! दरिद्रता बहुत कष्ट देती है। यह जीवोंकी परम शत्रु है। मैं इसी दरिद्रताके कारण अत्यन्त कष्ट पा रहा हूं। खाने तकको मुझे बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है। आप दयालु हैं। मुझे कुछ उपाय बतलाइए, जिससे इस पापिनीसे मेरा पीछा छूटे। उसके दुःखभरे वचन सुनकर मुनिराज बोले—भाई! जो जैसा काम करता है उसका उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है। उसे कोई नहीं मेट सकता। परन्तु धर्मसेवनसे बहुतोंका हित हुआ देखा गया है, इस कारण तू भी उसका दृढ़-चित्तसे पालन कर। उससे पाप नष्ट होकर तुझे पुण्यकी प्राप्ति होगी। इसके साथ इतना और करना कि मैं जो तुझे दो श्लोक

और उनके साधनेकी विधि बतलाए देता हूँ, उन्हें तू प्रतिदिन जपा करना। इससे तेरी दरिद्रता नष्ट हो जायगी। यह कह कर मुनिराजने उसे भक्तामरके दो श्लोक और उनके मत्र तथा साधनेकी विधि बतला दी। सुमति उन श्लोकोंको याद करके मुनिराजको वन्दना कर वहाँसे चला आया।

दूसरे दिन मत्र साधनेकी इच्छासे सुमतिने कुछ महाजनोंके लडकोंके साथ नाव द्वारा समुद्र–यात्रा की। भाग्यसे हवाकी विपरीत गति होनेके कारण उनकी नाव इधर उधर डुलने लगी। सबको अपने जीनेका सन्देह होने लगा। वे लोग घबरा कर अपने अपने देवकी आराधना करने लगे, परन्तु उससे उन्हें कुछ लाभ नहीं हुआ। आखिर नाव टूट–फूट कर डूब गई। भाग्यके विपरीत होने पर कभी सुख नहीं होता। इस महा सकटमें सुमतिको मुनिराजके सिखाये श्लोकोंकी याद आ गई। उसने उसी समय एक चित्त होकर उनका ध्यान किया। उसके प्रभावसे चक्रेश्वरीने आकर उसकी सहायता की। वह हाथोंसे तैर कर समुद्रके किनारे पर आ पहुँचा। देवी उसकी दृढ भक्ति देख कर बहुत सतुष्ट हुई। उसने उसे बहमूल्य रत्न प्रदान किये। जिनभगवान्के गुण–गानसे दुस्तर ससाररूपी समुद्र भी जब तैर लिया जाता है, तब उसके सामने तुच्छ समुद्रका तैर लेना कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

इसके बाद सुमति सकुशल अपने घर आ पहुँचा। देवीने उसे और भी खूब धन देकर कहा—"आपत्तिके समय मुझे याद करते रहना।" इतना कह कर वह चली गई।

भगवानकी स्तुतिके प्रभावसे सुमति खूब धनवान् हो गया। वह सब साहूकारोंमें प्रधान गिना जाने लगा। उसका राजसम्मान भी खूब होने लगा। दानियोंमें सबसे पहले उसीका नाम लिया जाने लगा।

सच है—पुण्यके प्रभावसे क्या नहीं होता। इसलिए जीव—मात्रको अपनी प्रवृत्ति अच्छे कामोंकी ओर अधिक लगानी चाहिए।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्॥ ५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु॥ ६॥

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्॥ ७॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

हूँ शक्तिहीन फिर भी करने लगा हूँ,
तेरी, प्रभो! स्तुति, हुआ वश भक्तिके मैं।
क्या मोहके वश हुआ शिशुको बचाने,
है सामना न करता मृग सिंहका भी॥
हूँ अल्पबुद्धि, बुधमानवकी हँसीका
हूँ पात्र, भक्ति तव है मुझको बुलाती।
जो बोलता मधुर कोकिल है मधूमें,
है हेतु आम्रकलिका बस एक उस्का॥

तेरी किये स्तुति विभो! बहु जन्मके भी,
होते विनाश सब पाप मनुष्यके है।
भौंरे समान अति श्यामल ज्यो अँधेरा
होता विनाश रविके करसे निशाका ॥

मुनीश! मुझमे आपकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं है, तो भी मैं जो स्तुति करता हूँ, वह केवल आपकी भक्तिके वश होकर करता हूँ। प्रभो! अपनी शक्तिका विचार न करके भी क्या हरिण अपने बच्चेको बचानेके लिए सिंहके सामने नहीं होता? तब शक्तिके न रहते हुए भी आपकी स्तुति करना मेरे लिए कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

प्रभो! मेरा शास्त्र-ज्ञान बहुत थोडा है और इसीलिए विद्वानोके सामने मैं हँसीका पात्र हूँ, तो भी आपकी भक्ति मुझे जबरन स्तुति करनेके लिए वाचाल कर रही है। क्योकि जिस भाँति कोकिलाएँ वसन्तमें जो मधुर मधुर आलापती हैं, उसका कारण आम्र-मजरी है उसी भाँति मेरे स्तुति करनेमें आपकी भक्ति कारण है।

नाथ! जिस भाँति सूर्यकी किरणों द्वारा सारे लोकमें फैला हुआ और भौंरोके समान काला अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी भाँति आपकी स्तुति करनेसे जन्म-जन्ममें एकत्रित हुए जीवोंके पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं।

सुधनकी कथा।

उक्त श्लोकोंकी आराधनाका फल शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त करना है। इसका फल सुधन नामके एक सेठको मिला था। उसकी कथा नीचे लिखी जाती है—

पटनेमें एक सुधन नामका सेठ रहता था। वह बहुत धनी और दानी था। उसकी जिनधर्म पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने एक बहुत विशाल रमणीय जिनमन्दिर बनवाया था। उसमें वह प्रतिदिन नियम पूर्वक जिनभगवानकी पूजा किया करता था।

एक दिन पटनेमें धूली और घासी नामके दो पाखण्डी कापालिक आए। उन्होंने अपनी नीच विद्याके बलसे नित्य-नये आश्चर्य दिखा दिखा कर सारे शहरको अपना भक्त बना लिया। शहरके छोटे मोटे सभी लोग उनकी पूजा करनेके लिए तीनों समय आने लगे।

एक दिन कापालिकने अपने एक शिष्यसे पूछा, शहरके सभी लोग यहाँ आते हैं या कोई नहीं भी आता है। शिष्यने उत्तर दिया प्रभो! आपकी भक्ति करनेके लिए आते तो प्रायः सभी हैं, पर हाँ केवल दो जने नहीं आते देख पड़ते। एक तो सुधन और दूसरा भीमराज। वे दोनों बड़े अभिमानी हैं। उनकी जैनधर्म पर बड़ी श्रद्धा है। इसलिए वे उसके सामने सभी धर्मोंको तुच्छ समझते हैं। सुन कर कापालिक क्रोधके मारे लाल हो उठा। उसने कहा, अच्छा देखूँगा उन लोगोंका धर्माभिमान! सब तो आकर मेरी भक्ति-पूजा करते हैं और उन्हें इतना गर्व जो मेरी विद्याकी भी वे कद्र नहीं करते!

रात हुई। सारा शहर निद्रादेवीकी गोदमें सुख भोग रहा था। उस समय कापालिकने अपने वीरोंको—पिशाचोंको बुला कर आज्ञा की कि जाकर सुधन और भीमराजके महलोंको पत्थर और धूलसे ऐसा पूर दो कि उनमें तिलमात्र भी खाली जगह न बच पावे, जिससे वे लोग बाहर न निकल कर भीतरके भीतर ही रह जायँ और अपने कियेका फल भोगें। पिशाचोंने वैसा ही किया। उनके महलोंको धूल और पत्थरोंसे खूब पूर दिया।

आकस्मिक अपने पर संकट आया देख कर सुधन और भीमराजको बड़ी चिंता हुई। परंतु उन्होंने इस विश्वास पर, कि धर्म दुःखमें सहायी होता है, कुछ विशेष कष्ट न मान कर भक्तामरका स्मरण करना शुरू कर दिया। उनकी अचल श्रद्धा देख कर चक्रेश्वरीने आकर उनसे कहा—तुम

किसी तरहकी चिन्ता न करो, धर्मके प्रसादसे सब अच्छा होगा। इतना कह कर उसने उनका सब विघ्न दूर कर दिया और उसके बदले कापालिककी शक्ति आजमानेके लिए उसके जितने भक्त थे, उनके घरोंको धूल और पत्थरोंसे पूर दिये। बातकी बातमें यह खबर कापालिकके पास पहुँची। उसने बहुत चेष्टायें कीं, पर किसी तरह वह अपने भक्तोंका विघ्न दूर नहीं कर सका। आखिर लज्जित होकर वह देवीके पावोंमें पडा और अपने अपराधकी देवीसे क्षमा करा कर उसने जैनधर्म स्वीकार किया।

जिनभगवानकी स्तुतिका इस प्रकार अचिन्त्य प्रभाव देख कर बहुतसे मिथ्यादृष्टियोंने—जिनधर्मके द्वेषियोंने—भी मिथ्यात्व छोड कर पवित्र जिनधर्म स्वीकार किया। जैनधर्मकी बडी प्रभावना हुई। जो धर्म संसारके जीवमात्रका उपकारक है उससे क्या नहीं हो सकता है।

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः॥ ८॥
आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि॥ ९॥

हिन्दी—पद्यानुवाद।

यों मान की स्तुति शुरू मुझ अल्प धीने,
तेरे प्रभाववश नाथ! यही हरेगी—

सल्लोकके हृदयको; जलविन्दु भी तो
मोती समान नलिनीदलपै सुहाते ॥
निर्दोष दूर तव हो स्तुतिका बनाना,
तेरी कथा तक हरे जगके अघोंको।
हो दूर सूर्य, करती उसकी प्रभा ही
अच्छे प्रफुल्लित सरोजनको सरोंमें ॥

नाथ! यही समझ कर कम बुद्धि होने पर भी मैं जो आपकी स्तुति करता हूँ वह भी आपके प्रभावसे सज्जनोंके चित्तको तो हरेगी ही। क्योंकि कमलके पत्र पर पड़ी हुई जलकी बूँदें भी मोतीकी तरह सुन्दर दिख कर लोगोंके चित्तको हरती ही हैं।

प्रभो! आपकी निर्दोष स्तुति तो दूर रहे, किन्तु आपकी पवित्र कथाका सुनना ही संसारके सब पापोंको नष्ट कर देता है। ठीक तो है-सूर्यके दूर रहनेपर उसकी किरणें ही सरोवरोंमें कमलोंको प्रफुल्लित कर देती हैं।

केशवदत्तकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मंत्रोंको जपनेसे केशव नामक एक महाजनके सब कष्ट दूर हो गए थे। उसकी कथा इस प्रकार है—

वसन्तपुरमें केशवदत्त नामक एक महाजन रहता था। वह निर्धन होकर मिथ्यात्वी था। एक दिन किसी मुनिराजसे उसने धर्मका उपदेश सुना। उसे सुन कर वह श्रावक हो गया। इसके बाद वह भक्तामरस्तोत्र सीख कर प्रतिदिन उसका बड़ी भक्तिके साथ पाठ करने लगा।

एक दिन केशवदत्त धन कमानेकी इच्छासे विदेशकी ओर चला। चलते चलते वह एक वनमें पहुँचा। वहाँ एक सिंहने उसे खा जाना चाहा। उस समय केशवने अपनी रक्षाका कुछ उपाय न देख कर भक्तामर-स्तोत्रकी आराधना करनी शुरू करदी। उसके प्रभावसे एकाएक

न जाने क्यों सिंह चिल्ला कर भाग खडा हुआ और केशवकी जान बच गई।

वहाँसे बच कर वह आगे बढ़ा। रास्तेमें उसे एक ठग मिला। ठगने उससे कहा—यहाँ एक रसकूप है। तुम उसमें उतर कर इस तूँबीको रससे भर लाओ। इस रसका यह माहात्म्य है कि उससे जो चाहो सो मिलता है। केशव बोला—भाई! तुमने कहा सो तो ठीक, पर कुएमें उतरा कैसे जायगा? उत्तरमें ठगने बडी नम्रतासे कहा—इसकी तुम कुछ चिन्ता न करो। मेरे पास एक मजबूत रस्सी है। उससे बाँध कर मैं तुम्हें उतार दूँगा और जब तुम तूँबीमें रस भरलोगे तब खींच लूँगा। वह बेचारा लोभमें पड कर ठगके झाँसेमें आ गया। ठगने उसकी कमरसे रस्सी बाँध कर उसे कुएमें उतार दिया, और जब उसने तूँबीमें रस भर लिया तब धीरे धीरे वह उसे ऊपर खींचने लगा। केशव लगभग किनारे पर आया होगा कि ठगने उससे कहा—ठहरो, जल्दी मत करो। पहले तूँबी मुझे देदो जिससे रस ढुलने न पावे। फिर तुम निकल आना। केशवने उसका कपट न समझ रसकी तूँबी उसे देदी। तूँबी उस ठगके हाथमें आई कि वह रस्सी छोडकर भाग गया। बेचारा केशव धटामसे कुएमें जा गिरा। भाग्यसे वह सीधा गिरा, इससे उसके चोट तो विशेष न आई, पर भीतरकी गरमीसे उसका दम घुटने लगा। उसे वहाँ भक्तामरके पाठ करनेकी याद हो उठी। वह बडी श्रद्धाके साथ भगवानकी आराधना करने लगा। उसके प्रभावसे देवीने आकर उसे किनारे लगा दिया। यहाँ भी उसकी जान बच गई। उसे यहाँ देवीकी कृपासे कुछ रत्न भी प्राप्त हुए। वहाँसे वह आगे बढा। रास्तेमें उसे साहूकारोंका एक सब मित्र, जो व्यापारकी

इच्छासे विदेश जा रहा था। केशव भी उसके साथ हो लिया। जब वे सब लोग एक घने जंगलमें पहुँचे, तो साथके लोगोंने केशवके रत्न छीन लेना चाहा। कारण, दर-असल वे साहूकार नहीं थे; किन्तु साहूकारके वेषमें डकैत थे। केशव पर फिर एक नई विपत्ति आई। पर उसे अपने धर्म पर गाढ़ श्रद्धा होनेके कारण उससे वह न डर कर एकासनसे भक्तामरकी आराधना करनेको बैठ गया। उसके प्रभावसे देवीने आकर अपनी मायासे सब डाकुओंको भगा दिया। यहाँसे जान लेकर केशव आगे बढ़ा, तो रास्ता ही भूल गया। बेचारा फिर बड़े संकटमें पड़ गया। सचमुच जब पापका उदय होता है, तब आपत्ति पर आपत्ति आती रहती हैं। एकसे छुटकारा हो नहीं पाता कि दूसरी सिर पर तैयार खड़ी रहती है। रास्तेमें उसे बड़ी प्यास लगी। वहाँ बड़ी दूर तक पानीका नाम तक नहीं था। प्यासके मारे वह छट-पटा उठा। पर करता क्या? उसे फिर सहसा स्तोत्र पाठ करनेकी याद हो उठी। उसने विचारा कि बिना पानीके जानके बचनेका सन्देह है। और जब मरना ही है, तो आकुलतासे अधीर होकर क्यों मरना? शान्तिसे धर्मकी आराधनापूर्वक मरना अच्छा है, जिससे कुगतिमें न जाना पड़े। इसके बाद वह भगवानकी आराधनामें लीन हो गया। उसके प्रभावसे झट देवीने आकर उसकी सहायता की। उसे पानी भी पीनेको मिल गया, उसकी जान भी बच गई और रास्ता भी उसे मालूम हो गया। वह वहाँसे आगे न जाकर घर लौट आया। उसे फिर धनकी खूब प्राप्ति हो गई। वह अपने धनको दान और हर एक धर्म-काममें खर्च करने लगा। उससे उसके पास दिन-दूना और रात-चौगुना धन बढ़ने लगा। यह सब धर्ममें अचल श्रद्धा रखनेका प्रभाव है। इसलिए भव्य पुरुषोंको धर्ममें सदा अपना मन लगाना चाहिए

और प्रतिदिन भक्तामरसे पवित्र स्तोत्रका पाठ करते रहना चाहिए। उसके प्रभावसे सब विघ्न-बाधाएँ देखते देखते नष्ट हो जाती हैं।

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभीष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत ॥ ११ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

आश्चर्य क्या भुवनरत्न, भले गुणोंसे,
तेरी किये स्तुति बने तुझसे मनुष्य।
क्या काम है जगतमे उन मालिकोंका,
जो आत्म-तुल्य न करे निज आश्रितोंको ॥
अत्यन्त सुन्दर विभो, तुझको विलोक,
अन्यत्र आँख लगती नहिं मानवोंकी।
क्षीराब्धिका मधुर सुन्दर वारि पीके,
पीना चहे जलधिका जल कोन खारा ॥

हे संसारके भूषण! हे जीवोंके स्वामी! इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं जो आपकी सत्यार्थ गुणों द्वारा स्तुति करनेवाले पुरुष संसारमें आप ही सरीखे हो जायँ। उस मनुष्यके संसारमे उत्पन्न होनेसे लाभ ही क्या जो अपने आश्रितोंको धन-वैभवसे अपने समान न बनाले?

नाथ! अनिमेष देखने योग्य आपके सुन्दर रूपको देख कर लोगोंके नेत्र दूसरी ओर जाते ही नहीं—उन्हें आपके सिवा और देवी-देवता नहीं सुहाते। भला, चन्द्रमाके सदृश क्षीरसागरका निर्मल पानी पीकर लवण-समुद्रका खारा जल पीनेकी कौन इच्छा करेगा?

कमदी सेठकी कथा।

इन श्लोकोंकी आराधना द्वारा कमदी नामक सेठको जो फल प्राप्त हुआ, उसकी कथा नीचे लिखी जाती है—

अणहिल नामक एक शहर था। उसके राजाका नाम प्रजापाल था। वहाँ एक कमदी नाम महाजन रहता था। वह बड़ा दरिद्री था। एक दिन अणहिलके वनमें एक मुनिराज आये। कमदी उनकी वंदनाके लिए गया। वहाँ मुनिराज द्वारा भक्तामर-स्तोत्रका माहात्म्य सुन कर उसने उसे सीख लिया और प्रतिदिन वह उसकी आराधना करने लगा। जब उसका जाप्य पूरा हुआ, तब देवीने आकर उससे कहा—जिस बातकी तुझे जरूरत हो, उसे माँगले। मैं तेरी इच्छा पूरी कर दूँगी। कमदीने देवीसे कहा—माँ! मैं दरिद्रताके मारे बहुत कष्ट पा रहा हूँ, इसलिए मुझे धनकी बड़ी जरूरत है। सुन कर देवीने कहा—"अच्छी बात है। मैं आज साँझको तेरे घर पर कामधेनु बन कर आऊँगी। तू अपने घड़ोंमें मेरा दूध दुह लेना। वह सब दूध मेरे प्रसादसे सोना बन जायगा।" इतना कह कर देवी चली गई। सच है—ऐसा कौन असाध्य काम है, जिसे देवता लोग न कर सकते हों।

साँझ होते ही देवी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार गायके रूपमें कमदीके घर आई। कमदीने उसके दूधसे कोई इकतीस घड़े भर लिए। वे सब फिर सोनेके बन गये। यह देख कर कमदी बड़ा खुश हुआ। इसके बाद उसने देवीसे प्रार्थना की कि देवि! आपकी कृपासे मुझे धन तो बहुत मिल गया, पर एक बात तब भी हृदयमें खटकती है। वह यह कि इतना धन होने पर भी जिस घरमें धर्मात्मा पुरुषोंके चरण न पड़ें तो वह घर एक तरह अपवित्र ही है। मेरी इच्छा है कि

मै एक दिन यहाँके सब धर्मात्माओंका निमन्त्रण करूँ। इसलिए एक बार तुम और यहाँ इसी रूपमें आनेकी कृपा करो तो बहुत अच्छा हो। ' तथास्तु ' कह कर देवी चली गई।

अवसर देख कर कमदीने सारे शहरका निमन्त्रण किया। महाराज प्रजापाल भी निमन्त्रित किये गये। सुन्दरसे सुन्दर और स्वादिष्टसे स्वादिष्ट वस्तुएँ तैयार की गईं। कामधेनुके दूधकी खीर बनवाई गई। फिर सबको बडे आदर-विनयसे भोजन कराया गया। भोजन करके सब बडे प्रसन्न हुए और शतमुखसे उस भोजनकी तारीफ करने लगे।

इसके बाद कमदीने देवीकी कृपासे प्राप्त हुआ धन महाराजको दिखलाया। महाराज कमदीके पास इतना अटूट धन देख कर बडे खुश हुए, और यह कह कर वे चल गये कि इस धनको पात्र-दान, विद्या-दान आदि परोपकारके कामोंमें तथा अपने लिये खूब खर्च करना। यह सब धर्ममें तत्पर रहनेका फल है। इसलिए भव्य पुरुषोंको धर्मकी ओर सदा चित्त लगाना चाहिए।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

जो शान्तिके सुपरमाणु प्रभो, तनूमे
तेरे लगे, जगतमें उतने वही थे।
सौन्दर्यसार, जगदीश्वर, चित्तहर्ता,
तेरे समान इससे नहिं रूप कोई॥

हे त्रिभुवनके एक भूषण ! जिन राग-रहित तेजस्वी परमाणुओंके द्वारा आपका शरीर वना है, वे परमाणु संसारमें उतने ही हैं। यही तो कारण है कि संसारमें आपके समान सुन्दर किसी दूसरेका रूप ही नहीं है।

सुबुद्धिकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे सुबुद्धि नामके मंत्रीने फल प्राप्त किया था। उसकी कथा नीचे लिखी जाती है—

भारतवर्षमें अंगदेश वड़ा प्रसिद्ध देश है। आस-पासके छोटे छोटे पर वहुत सुन्दर गाँवोंसे वह शोभित है। उसकी प्रधान राजधानी चम्पापुरी है। उसका राजा वहुत दानी, वुद्धिमान् और नीतिज्ञ था। उसका नाम कर्ण था। उसका मंत्री भी वड़ा गुणवान् और राजनीतिका अच्छा जानकार था। उसका नाम सुवुद्धि था। वह जिनधर्मका अतिशय भक्त था। भक्तामर-स्तोत्र पर उसकी गाढ़ श्रद्धा थी, इस-लिए वह उसकी निरंतर आराधना किया करता था।

एक दिन एक धूर्त कापालिक वहुरूपियेका रूप धारण कर राज-सभामें आया और अपनी विद्याकी करामातसे वह कृष्ण, ब्रह्मा, शंकर, गणेश, कार्तिकेय, वुद्ध, क्षेत्रपाल आदिका रूप वनाकर नाचने लगा और सारी सभाको रंजायमान करने लगा। सभाके लोग उसकी कुशलता देखकर वहुत खुश हुए और उसकी तारीफ करने लगे।

यह सव तमाशा दिखा कर अन्तमें उसने जिनभगवानका रूप लेना चाहा। सुवुद्धिको इससे वहुत दुःख हुआ। अपने धर्मकी इस तरह हँसी होना उसे सह्य नहीं हुआ। परन्तु वह करता भी क्या? राजाके सामने वह वोल भी नहीं सकता था। और वह तो फिर एक विनोद था—सवके चित्तरंजन करनेका दृश्य था। इसलिए वह कुछ कहता भी, तो उसकी सुनता कौन? उसने अपने धर्मकी रक्षाका कुछ

उपाय न देख मन लगा कर भक्तामरकी खूब आराधना की। धर्मके अचिन्त्य प्रभावसे उसी समय चक्रेश्वरीने प्रगट होकर उस धूर्त्त कापालिकसे कहा—

"पापी यह तूने क्या ढोंग रचा है? क्यों इन बेचारे भोले लोगोंको अपनी मायाजालमें फँसा रहा है? तू नहीं जानता कि जिनभगवानका वेष उन्हींको शोभा देता है। दूसरा उसे कभी नहीं धारण कर सकता। क्या कभी हाथीका भार बैल भी उठा सकता है? ध्यान रख, जो मायासे ठगे हुए जिन-रूपको ग्रहण कर फिर उसे छोड़ देते है, वे नियमसे दुस्तर संसाररूपी समुद्रमें अनन्तकालके लिए कूद पडते हैं।" इस प्रकार उसकी खूब भर्त्सना करके देवी बोली—पापी यदि तू अपने जीनेकी इच्छा करता है, तो इस धर्मात्मा सुबुद्धिके पाँवोंमें पड कर इससे क्षमा करा। क्योंकि इसीकी कृपासे आज पवित्र जिनधर्मकी हँसी होनेसे बची है। सिवा इसके तुझसे पापीकी कुशल नहीं है।

देवीके अप्रतिम तेजको देख कर कापालिकके तो होश उड गए। उसका सारा शरीर काँप उठा। देवीके कहे अनुसार वह हाथ जोड-कर सुबुद्धिके पाँवोंमें पडा और अपने अपराधकी क्षमा करा कर आगे ऐसे अनर्थके न करनेकी उसने प्रतिज्ञा की।

मंत्रीने धर्म-प्रभावनाका अच्छा अवसर देख कर भक्तामर-स्तोत्रका प्रभाव सब लोगोंको कह सुनाया। विद्वान् लोग ऐसे मौकेको खोते नहीं है। क्योंकि वे समयके जाननेवाले होते है। सुबुद्धिके उपदेशका सारी सभा पर बहुत अच्छा असर पड़ा। राजा, कापालिक, तथा और बहुतसे लोग भक्तामरका प्रभाव सुन कर और आँखोंसे प्रत्यक्ष देख कर जैनी बन गए। धर्मकी खूब प्रभावना हुई।

इस प्रकार भक्तामरका प्रभाव जान कर जो भव्य पुरुष प्रतिदिन इसकी भक्तिभाव और श्रद्धाके साथ आराधना करते हैं, वे मनोवांछित सुखको पाते हैं। क्योंकि 'धर्मः सर्वसुखाकरः' अर्थात् धर्म सब सुखोंकी खान है।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम्॥ १३॥

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्॥ १४॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

तेरा कहाँ मुख सुरादिक नेत्ररम्य,
सर्वोपमान-विजयी, जगदीश, नाथ,
त्योंही कलंकित कहाँ वह चन्द्र-बिम्ब,
जो हो पड़े दिवसमें द्युतिहीन फीका॥
अत्यन्त सुन्दर कलानिधिकी कलासे,
तेरे मनोज्ञ गुण नाथ, फिरें जगोंमें।
है आसरा त्रिजगदीश्वरका जिन्होंको,
रोक उन्हें त्रिजगमें फिरते न कोई॥

हे गुण-समुद्र! सब उपमानोंको जीतनेवाला—इतना सुन्दर कि संसारमें जिसकी उपमाके योग्य कोई पदार्थ ही नहीं है, और देव, मनुष्य, विद्याधर, धरणेन्द्र आदिके नेत्रोंको अपनी ओर आकर्षित करनेवाला—जिसे ये भी बड़ी उत्कण्ठतासे देखते हैं, ऐसा आपका त्रिभुवन-सुन्दर मुख कहाँ? और कलंकयुक्त चन्द्रमा कहाँ? जो कि दिनमें फीका पड़ जाता है—शोभारहित हो जाता है। अर्थात

बहुतसे लोग आपके मुखको चन्द्रमाकी उपमा देते हैं, पर वह ठीक नहीं है। कारण आपकी शोभा स्थाई है और उसकी अस्थाई। इसके सिवा वह कलंकी है और आप निष्कलंक।

हे प्रभो, आपके पूर्ण चन्द्रमाकी कलाके समान निर्मल गुण तीनों लोकोंको भी लाँघ चुके हैं-सर्वत्र ही आपके गुण फैल गए हैं। सो ठीक ही है जो इन्द्र, नरेन्द्र सरीखे त्रिभुवनके मालिकोंके भी मालिकके आश्रित हैं, उन्हें अपनी इच्छानुसार जहाँ तहाँ घूमते रहते कौन रोक सकता है?

डाही श्राविकाकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मन्त्रोंकी आराधनासे एक डाही नामकी श्राविकाको फल प्राप्त हुआ है। उसकी कथा नीचे लिखी जाती है—

पटनामें एक सेठ रहता था। उसका नाम सत्यक था। वह बडा सत्यवादी था। उसके एक लडकी थी। वह बहुत सुन्दर थी। उसका नाम डाही था। एक दिन सत्यक हेमचद्र मुनिराजकी वन्दनाके लिए गया। काललब्धिकी प्रेरणासे उसके साथ उसकी लडकी डाही भी गई। मुनिराजने सत्यकको देव—पूजाका माहात्म्य सुनाया। उससे वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मुनिराजके पास प्रतिदिन देव-पूजा करनेकी प्रतिज्ञा ली। साथ ही डाहीने भी वही प्रतिज्ञा ग्रहण की और 'नियम लिया कि देव-पूजा किये बिना मैं भोजन नहीं करूँगी। इसके सिवा दोनों भक्तामर—स्तोत्रके नित्य पाठ करनेकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर और मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चले आए।

डाहीके व्याहका समय आया। वह भृगुकच्छ नामक शहरके रहनेवाले धनदत्त सेठसे व्याही गई। सुसराल जाते समय रास्तेमें एक तालावके किनारे पर विश्रामके लिए पडाव किया गया। भोजनकी तैयारी हुई। उत्तम और सुस्वादु भोजन तैयार किया गया। नव वधूसे

उसके राजा महीपाल थे। वे बहुत गुणवान्, नीतिके जाननेवाले, और बड़े प्रजाप्रिय थे। भाग्यसे उन्हें एक पिशाच लग गया। उसके दूर करनेका बहुत प्रयत्न किया गया; परन्तु किसीके द्वारा उन्हें लाभ नहीं पहुँचा। एक दिन राजमंत्री, गुणसेन मुनिराजके पास गया और उनसे उसने प्रार्थना की—प्रभो! मेरे महाराजको एक पिशाच लग गया है। वह उन्हें बहुत तकलीफ दिया करता है। कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे उनका दुःख दूर हो जाय। उत्तरमें मुनिराजने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर कहा कि अच्छी बात है, कल बतलायँगे। मंत्री उनका उत्तर पाकर चला आया।

रातमें मुनिने भक्तामरके दो श्लोकोंकी आराधना की। उसके प्रभावसे देवीने प्रत्यक्ष होकर कहा—मुनीश्वर! भक्तामर काव्यके द्वारा मंत्रा हुआ जल राजाको पिलाने और उसी जलको उनकी आँखों पर छींटनेसे उन्हें शीघ्र ही आराम हो जायगा।

दूसरे दिन मंत्री फिर मुनिके पास आया। मुनिने वे सब बातें मंत्रीसे कहीं; और मंत्रीने जाकर वह हाल राजासे कहा। सुन कर राजा बहुत खुश हुए। उन्होंने सब लोगोंके सामने मुनिराज द्वारा उस प्रयोगको करवाया। मुनिराजने ज्यों ही वह जल राजाको पिला कर उनकी आखों पर छिड़का त्यों ही वह पिशाच चिल्ला कर भाग खड़ा हुआ। राजा स्वस्थ हो गए।

भक्तामरका ऐसा अचिन्त्य प्रभाव देख कर उस समय वहाँ जितने लोग उपस्थित थे, उन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। सबकी जिन-धर्म पर बड़ी श्रद्धा हो गई। उनमें बहुतोंने जैनधर्म स्वीकार किया। जैनधर्मकी बड़ी प्रभावना हुई।

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥ १६ ॥
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ॥ १७ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

वत्ती नहीं, नहि धुआँ, नहि तैलपूर,
भारी हवा तक नहीं सकती बुझा है ।
सारे त्रिलोक बिच है करता उजेला,
उत्कृष्ट दीपक विभो, द्युतिकारि तू है ॥
तू हो न अस्त, तुझको गहता न राहु,
पाते प्रकाश तुझसे जग एक साथ ।
तेरा प्रभाव रुकता नहिं वादलोंसे,
तू सूर्यसे अधिक है महिमानिधान ॥

हे नाथ ! आप सारे ससारके प्रकाशित करनेवाले अपूर्व दीपक हैं । वह इस तरह कि दूसरे प्रदीपोंमें वत्तींमें धुआँ निकलता रहता है, और आपकी वर्त्ति (मार्ग) निर्धूम-पापरहित है-निर्दोष है । उनमें तेलकी आवश्यकता रहती है, और आपके लिए उसकी कुछ जरूरत नहीं । वे एक वहुतही थोडी जगहको प्रकाशित करते हैं, और आप तीन जगत्के प्रकाशित करनेवाले हैं । इसके सिवा और और प्रदीप एक साधारण हवाके झकोरोंसे बुझ जाते हैं, और आपका तो बडे बडे पर्वतोंको हिला देनेवाली हवा भी कुछ नहीं बिगाड सकती ।

हे मुनीन्द्र ! आपकी महिमा सूर्यसे भी कहीं बढकर है । देखिए, सूर्यको राहु ग्रस लेता है, परतु आप कभी उसके ग्रास नहीं बने । सूर्य दिनमें क्रम क्रमसे और मध्य-

हैं, किसीको सँड़सीसे मुँह फाड़ फाड़ कर खून पिलाया जा रहा है, और कोई आगमें भूना जा रहा है! इस प्रकार आश्चर्य-भरी घटनाको देखते ही राजकुमार डरके मारे चिल्ला उठा। भयसे उसकी चेतना लुप्त होने लगी। वह गश खाकर जमीन पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद सायं-कालीन ठंडी हवाके लगनेसे उसे कुछ होश हुआ। उसने आँख खोल कर देखा तो उसे वहाँ सिवा मुनिके और कोई नहीं दीखा; पर तब भी वह भयके मारे काँप रहा था।

मुनिने उसकी यह हालत देख कर उससे इस प्रकार डर जानेका कारण पूछा। उसने वहाँ जो कुछ देखा था वह सब मुनिसे कह दिया। मुनिने कहा—संभव है, यह सब भूतोंकी लीला हो। बिना उनके ऐसा और कौन कर सकता है। इसके बाद मुनिने उसे उपदेश दिया, धर्मका स्वरूप समझाया, पुण्य-पापका फल कहा, और आत्मा और लोक-परलोकका अस्तित्व सिद्ध कर बताया। राजकुमार पर मुनि-राजके उपदेशका बहुत प्रभाव पड़ा। उससे वह चार्वाक मतको छोड़ कर जैनी बन गया। इसके बाद वह मुनिराजको नमस्कार कर अपने महल लौट आया।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम्॥ १८॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

मोहान्धकार हरता, रहता उगा ही,
जाता न राहु-मुखमें, न छुपे घनोंसे;

अच्छे प्रकाशित करे जगको, सुहावे,
अत्यन्त कान्तिधर नाथ, मुखेन्दु तेरा ॥

हे नाथ! आपका अत्यन्त कान्तिमान मुख-कमल सारे ससारको प्रकाशित करनेवाला अपूर्व चन्द्रमा है—चन्द्रमासे कहीं वढकर है, क्योंकि चन्द्रमाका उदय निरन्तर नहीं रहता, पर आपका मुख-चन्द्र सदा उदित रहता है। चन्द्रमा अन्धकार नष्ट कर सकता है, पर मोहान्धकार नहीं, और आपका मुख-चन्द्र दोनोंको नष्ट करनेवाला है। चन्द्रमाको राहु और मेघ धर दवाते हैं, पर आपके मुख-चन्द्रका ये कुछ नहीं कर सकते।

आछंड मंत्रीकी कथा।

इस श्लोकके मत्रसे सव प्रकारके दोष नष्ट होते हैं। इसका प्रभाव वतलानेके लिए इसकी कथा लिखी जाती है—

गुजरात देशके अन्तर्गत पाटन नामका एक मनोहर शहर है। उसके राजाका नाम कुमारपाल है। राजमत्रीका नाम आछड है। वह बुद्धिमान और गुणज्ञ है। उसकी जिनधर्म पर वहुत श्रद्धा है। वह तीनों काल भक्तामर-स्तोत्रकी अत्यन्त भक्ति और श्रद्धाके साथ पाठ किया करता है।

राजा उसकी राजभक्ति पर वहुत प्रसन्न थे। इसलिए उन्होंने मत्रीके गुणों पर मुग्ध होकर उसे पुरस्कारके रूपमें धनशाली लाडदेशका राज्य दे दिया। आछंड उसका नीतिके साथ पालन करने लगे।

एक बार आछडको दूसरे देश पर चढाई करके बाहर जाना पड़ा। रास्तेमें भाग्यसे उनकी सेना मार्ग भूल कर एक वहुत ही भयानक, और सिंह, व्याघ्र, चीते, सूअर आदि हिंस्र जीवोंसे भरे हुए वनमें जा निकली। इस आकस्मिक विपत्तिके आनेसे उनकी सेनाके प्राण मुट्ठीमें आ गए। मत्री महाशयको भी वहुत चिन्ता हुई, पर केवल चिन्ता करनेसे लाभ क्या हो सकता था? आखिर उन्होंने यह विचार

कर कि, सब ओरसे निराश हुए जीवोंको धर्म ही एक आशास्थल रह जाता है, 'नित्योदयं' इस श्लोककी समंत्र आराधना की। उसके प्रभावसे एक देवसुंदरीने आकर मंत्रीको चन्द्रकान्तमणि और विष नष्ट करनेवाला एक रत्न दिया, और कहा कि इसके प्रभावसे तुम्हें रास्ता मिल जायगा। इसके अतिरिक्त और कभी तुम्हें कष्ट उठाना पड़े तो तुम मुझे याद करना। इतना कह कर देवी अपने स्थान पर चली गई।

उस मणिके प्रभावसे वे अपने परिचित रास्ते पर आ पहुँचे। वहाँसे आगे चल कर उन्होंने बड़े बड़े बलवान राजोंको पराजित किया, अनेक देश अपने वश किये और अन्तमें वे एक बड़े भारी अभिमानी और पराक्रमी मलय नामके राजाको जीत कर बहुत कुछ सम्पत्ति और चतुरंग सेना-सहित अपने राज्यमें लौट आए। इसके बाद उन्होंने पवित्र आशीर्वादकी इच्छासे अपनी माताके पास जाकर माताको प्रणाम किया।

माता पुत्रके सुख-पूर्वक लौट आनेसे बहुत प्रसन्न हुई। वह पुत्रको आशिष देकर बोली—पुत्र! इसमें कोई संदेह नहीं कि तुम बड़े बलवान हो, पर तुम्हारे ऐसे प्रचंड बलको देख कर एक बात बहुत खटकती है। वह यह कि तुमने अभी तक जितने राजोंको जीते हैं, वे सब साधारण राजे हैं। निर्बलोंको पराजित करनेसे महत्व प्रगट नहीं होता। वह बल ही क्या, जिससे वनमें मृगोंको मारनेवाला केसरी सिर पर खड़ा रहे और उसका कुछ प्रतिकार न किया जाकर छोटे छोटे जीव मारे जायँ। तुम्हारे सिर पर भी अभी एक बड़ा बलवान राजा खड़ा है। वह तुम्हारा बड़ा भारी दुश्मन है। तुम्हें उचित है कि तुम उसे पराजित करके अपने वश करो। वह भृगुकच्छ देशका स्वामी पृथ्वीसेन है।

माताकी आज्ञा स्वीकार कर आछड उसी समय शत्रुपर धावा करनेके लिए अपनी बहुतसी सेनाको लेकर चल पडे। उनकी सेना इतनी थी कि उसके भारसे पृथ्वी भी काँपती थी।

पृथ्वीसेनको आछडकी चढाईका हाल मालूम होते ही वे भी युद्धके लिए तैयार हो गए। दोनों ओरकी सेनाकी मुठभेड हुई। घोर युद्ध मचा। हजारों वीर मारे गए। खूनकी नदी बह निकली। कई दिनोंतक युद्ध होता रहा। आखिर विजय-लक्ष्मी आछडको प्राप्त हुई। उन्होंने एक बडे भारी शत्रुको पराजित कर पृथ्वी पर अपना प्रभाव खूब फैला दिया। सच है—बलवानसे निर्बल पराजित होते ही है।

इसके बाद आछड बड़े बाजे-गाजेके साथ वन्दियों द्वारा अपना यशोगान सुनते हुए अपनी राजधानी लौट आए। प्रजाने उनका बहुत सम्मान किया, खूब उत्सव मनाया।

देखिए! कहाँ तो मन्त्रीपद! कहाँ छोटेसे राज्यका मिलना! और कहाँ इतने बडे भारी शत्रुका वश करना! यह सब भक्तामर सदृश पवित्र स्तोत्रकी आराधनाका फल है। जो भव्य ऐसे पावन स्तोत्रकी प्रतिदिन भक्ति और श्रद्धासे आराधना करते है, उनके लिए ससारमें कोई वस्तु कष्ट-प्राप्य नहीं है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः॥ १९॥

हिन्दी–पद्यानुवाद।

क्या भानुसे दिवसमें, निशिमे शशीसे,
तेरे प्र[illegible] मुखसे तम नाश होते।

अच्छी तरा पक गया जग-बीच धान,
है काम क्या जल भरे इन बादलोंसे ॥

प्रभो! जब आपका मुख-चन्द्र ही अन्धकारको नष्ट कर सकता है, तब रातमें चन्द्रमाका और दिनमें सूर्यका काम ही क्या है? कारण संसारमें धानके खेतोंके पक चुकने पर जलके भरे हुए बादलोंसे कोई लाभ नहीं।

लोकपालकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे सब उपसर्ग नष्ट होते हैं, उसकी कथा इस प्रकार है—

भारतवर्षमें विशाला नामकी एक रियासत है। वह छोटी है, पर बहुत सुन्दर है। उसमें सेठ–साहूकारोंके बड़े बड़े महल हैं। अपनी सुन्दरतासे वह स्वर्गकी शोभाको भी नीचा दिखाती है।

उसमें एक धनी साहुकार रहता था। उसका नाम लक्ष्मण था। वह बहुत बुद्धिमान, सदाचारी और गुणी था। उसने अपने गुरु श्रीचन्द्रकीर्ति मुनिसे भक्तामर, उसके मंत्र, और उसकी आराधना-विधि सीखी थी।

एक दिन लक्ष्मण बड़े भक्ति-भावसे स्तोत्रकी आराधना कर रहा था। उसके प्रभावसे एक देवी, जो कि सूर्यके तेजसे भी कहीं अधिक तेजस्विनी थी, आई। उसने लक्ष्मण पर प्रसन्न होकर उसे चन्द्रमाके आकारका एक कान्तिशाली रत्न दिया। सच है–जब देवता प्रसन्न होते हैं तब वे कुछ न कुछ अमोल वस्तु देते ही हैं। इसके बाद देवीने उससे कहा—

"रातमें मंत्र पढ़ कर इस रत्नको आकाशमें फेंकनेसे यह चन्द्रमाका काम देगा।" देवी इतना कह कर अपने स्थान पर चली गई।

एक दिन विशालके राजा लोकपाल शत्रुको जीता पकडलानेकी इच्छासे सेना लेकर रातहीमें शत्रु पर जा चढ़े। रास्तेमें घोर अधकारके कारण सारी पृथ्वी अन्धकारमय हो रही थी। ऐसी दशामें महाराजको एक पैर भी आगे चलना कठिन हो गया। उनकी सब सेना थोडी दूर जाकर अन्धकारके कारण रास्ता दिखाई न पडनेसे एक जगह खडी हो गई।

लक्ष्मणके पास देवीका दिया हुआ वह महारत्न था। उसे उसने भक्तामरके द्वारा मत्र कर आकाशमें फेंका। देखते देखते ससारको प्रकाशित करनेवाले चद्रमाका उदय हो गया। एकाएक इस आश्चर्यको देख कर राजा मनमें बहुत प्रसन्न हुए। लक्ष्मणने उनकी बडे मौके पर सहायता की। उससे महाराजने सतुष्ट होकर लक्ष्मणको अपने राज्यका आधा हिस्सा दे डाला।

इसके बाद महाराजने आगे बढ़ कर दिग्विजय किया। बड़े बड़े बलवान शत्रुओंको उन्होंने अपने वश किए और फिर अतुल सम्पदाके साथ वे अपनी राजधानीमें लौट आए।

जो लोग वीतराग भगवानकी स्तुति भक्तिभावसे पढा करते है, उनके सब विघ्न नष्ट होते है, उनका मानसिक अधकार अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है और वे अपनी मनचाही वस्तुको प्राप्त करते है। अर्थात् धर्मके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि॥ २०॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

जो ज्ञान निर्मल विभो! तुझमें सुहाता,
भाता नहीं वह कभी परदेवतामें।
होती मनोहर छटा मणिमध्य जो है,
सो काँचमें नहिं; पड़े रवि-बिम्बके भी॥

नाथ! लोक और अलोकमें स्थान करके जो ज्ञान आपमें शोभाको प्राप्त होता है वह हरि, हर, ब्रह्मा आदि देवोंमें कभी नहीं शोभता। जो तेज एक महामणिको प्राप्त होकर महत्त्व प्राप्त करता है, वह महत्त्व बहुत किरणोंवाले काँचके टुकड़ेमें उसे प्राप्त नहीं हो सकता।

नामराजकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधना द्वारा जिसने फल पाया, उसकी कथा लिखी जाती है—

नागपुरी नामकी एक सुन्दर पुरी है। उसके राजाका नाम नामराज है। वे बड़े बलवान और बुद्धिमान हैं। उन्होंने सब शत्रु-ओंको पराजित करके अपने राज्यको निष्कण्टक बना लिया है। उनकी महारानीका नाम विशाला है। वे बड़ी सती, पतिव्रता, शीलसौभाग्य आदि श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं और बहुत सुन्दरी हैं। देव-कन्याएँ भी उनका रूप देख कर लज्जित हो जाती हैं। रानी इस समय गर्भ-भारसे दुखी है। सच है प्रसवसे कौन महिला दुःख नहीं उठाती।

महाराजने रानीको गर्भवती देख कर ज्योतिषियोंको बुला कर पूछा—आप लोग बतलाइए कि, महारानीके पुत्र होगा या पुत्री? बेचारे ज्योतिषी नाम-मात्रके ज्योतिषी थे। वे ऐसे बड़े पंडित नहीं थे जो राजाके पूछे प्रश्नका ठीक ठीक उत्तर दे सकते। इस कारण वे सबके सब चुप हो रहे। उनसे कुछ उत्तर देते नहीं बना। जिनका जिस विषयमें ज्ञान ही थोड़ा होता है वे उस विषयका पूरा उत्तर दे

भी नहीं सकते। यही कारण था कि वे राजाके प्रश्नका भावी फल नहीं बता सके।

उस समय विद्यानन्दी नामके एक महामुनि नागपुरीमें विद्यमान थे। वे सब विषयोंके बहुत अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने राजाके प्रश्नकी चर्चा सुन कर भक्तामर-स्तोत्रकी भक्तिपूर्वक आराधना की और उसके प्रभावसे प्रत्यक्ष हुई देवी द्वारा सब बातें जान लीं।

इसके बाद वे एक दिन राजसभामें आकर सब लोगोंके सामने राजासे बोले—राजन्! तुम्हारे प्रश्नका उत्तर ज्योतिषी लोग तो दे नहीं सके, पर मैं देना चाहता हूँ। सुनिए, आजसे ठीक बारहवें दिन सवेरे ही महारानीके पुत्र उत्पन्न होगा। उसके नेत्र तीन होंगे। वह बडा बलवान होगा, परन्तु इसके साथ ही आपका प्रधान हाथी मर जायगा। इतना कह कर मुनि चुप हो गए।

मुनिकी भविष्यद्वाणी सुन कर ब्राह्मण लोग उनकी दिल्लगी उडाने लगे। वे बोले—देखो इस क्षपणककी धृष्टता, जो पीठ पीछेकी बात को तो जान नहीं सकता और चला भविष्य कहने! मुनि इसका कुछ उत्तर न देकर चल दिए। यह देख ब्राह्मणोंको भी चुप रह जाना पडा।

आखिर बारहवें दिन प्रातःकाल ही रानीने पुत्र-रत्न प्रसव किया। उसके तीन नेत्र थे। वह बहुत तेजस्वी भी था। इसके साथ ही उधर राजाके प्रधान गजराजकी भी मृत्यु हो गई। मतलब यह कि मुनिराजने जो जो बातें बतलाई थीं, वे सब अक्षरशः सत्य हो गईं। सच है पूर्णज्ञानीका कहा कभी मिथ्या नहीं होता।

यह देख राजाने मुनिराजकी बहुत प्रशंसा कर कहा—ऐसे साधुओंको धन्य है, ये ही सर्व-श्रेष्ठ साधु हैं और इन्हींमें पूर्णज्ञानका साम्राज्य अधिष्ठित है।

जैनधर्मके ऐसे अश्रुत-पूर्व प्रभावको देख कर वे मुनिकी दिल्लगी उड़ानेवाले ब्राह्मण और उनके अतिरिक्त वहुतसे अन्यधर्मी जन भी जैनी हो गए । राजाने भी जैनधर्म ग्रहण कर लिया । मुनिराजके उद्योगसे धर्मकी वड़ी प्रभावना हुई ।

यह जान कर अन्य पुरुषोंको भी इस पवित्र स्तोत्रकी सदा आराधना करते रहना चाहिए ।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥ २१ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

देखे भले, अयि विभो ! परदेवता ही,
देखे जिन्हें हृदय आ तुझमें रमे ये ।
तेरे विलोकन किये फल क्या प्रभो, जो
कोई रमे न मनमें परजन्ममें भी ॥

हे प्रभो ! हरि, हर, ब्रह्मा आदि देवोंका देखना कहीं आपसे अच्छा है; क्योंकि उन्हें देख कर ही हृदय आपमें संतोष पाता है । इसका कारण यह है कि वे राग-द्वेष-सहित हैं और आप वीतराग-राग-द्वेष-रहित हैं । नाथ ! आपके देखनेसे लाभ ही क्या जो संसारमें जन्म-जन्मान्तरमें भी कोई देवी-देवता मेरे मनको हर नहीं सकते ।

जीवनन्दी मुनिकी कथा ।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनाके फलसे मन दूसरी ओर न जाकर स्थिर रहता है । इसकी कथा इस प्रकार है—

गुजरात देशमें देवपुर नामका एक सुन्दरपुर था। एक दिन विहार करते हुए जीवनन्दी नामके मुनि अपने संघके साथ इधर आ निकले। वे पास ही एक उपवनमें ठहरे। उन्हें जान पड़ा कि इस गाँवमें श्रावक लोग नहीं है। तब उन्होंने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि इस शहरमें श्रावक लोग नहीं है क्या? उसने कहा कि पहले तो यहाँ बहुतसे श्रावक लोग रहते थे, परन्तु बहुत दिनोंसे इधर उनके गुरुओंका आना-जाना बन्द हो जानेके कारण दूसरे धर्मवालोंके उपदेशसे वे लोग शैव हो गए हैं।

यह सुन कर मुनि अपने सघको लिए हुए वहाँके एक शिवमन्दिरमें जाकर ठहर गए। जो धर्मकी प्रभावनाके चाहनेवाले होते है, वे उचित या अनुचित स्थानका विचार नहीं करते। उन्हें अपने कामसे मतलब रहता है। ऐसे लोग अपने पवित्र धर्मका नाश नहीं सह सकते। और थोडे बहुत सावद्यके बिना धर्मकी प्रभावना भी नहीं होती। जैनमुनियोंको शिवमन्दिरमें आये हुए देख कर शैव लोग बहुत प्रसन्न हुए। सच है—एक दूसरे धर्मके माननेवालेको अपनेमें शामिल होते हुए देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होती? वे लोग परस्परमें कहने लगे कि, देखो, शिवजीका कितना प्रभाव है, जो जैन-साधु भी शिवमन्दिरमें आ गये। उन्हें देखनेके लिए बहुतसे लोग एकत्रित हो गये। उन्हें देख कर मुनिराज बोले—भाइयो! ससारमें जितने धर्म है उन सबमें जिनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसके द्वारा स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। जैनधर्ममें जैसा दया पालन करना बतलाया गया है वैसा किसी धर्ममें नहीं बतलाया गया है। सब धर्मोंकी भीत कुछ न कुछ स्वार्थको लिए हुए खडी की गई है, पर एक जैनधर्म ही ऐसा धर्म है जिसमें स्वार्थका नाम भी नहीं। और सब देवोंमें जिनदेव ही सर्वोत्कृष्ट देव

हैं, जो वास्तविक देवपनेके सर्वथा योग्य हैं। संसारके और और देवोंमें कोई तो रागी है, कोई द्वेषी है, किसीके हाथोंमें शस्त्र है, कोई भयंकर है जिसे देखकर भय लगता है; और कोई क्रूर हैं जो सदा जीवोंकी बलि लिया करते हैं। पर जिनदेवमें ऐसी एक भी बात नहीं है। वे परम वीतराग और शांत हैं। संसारी जीव सदा आकुलतामें फँसे रहते हैं, इसलिए उन्हें ऐसे देवोंके पूजनेकी आवश्यकता है जो उन्हें आकुलतासे छुटा कर शान्ति देनेवाले हों। पर संसारी जीवोंकी आकुलता अन्य देवतागण दूर नहीं कर सकते; क्योंकि वे स्वयं ही आकुल हैं। जो स्वयं भूखों मरता है वह दूसरोंकी भूख कैसे दूर कर सकता है? इन बातोंको देख कर कहना पड़ता है कि आकुलता मिटाकर उन्हें शान्ति प्रदान करनेवाले परम वीतराग और शान्त जिनदेव ही हैं; और वे ही देवोंके देव हैं। इसके सिवाय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी उन्हें भक्तिसे सदा पूजते हैं। इसलिए तुम्हें जिनधर्म स्वीकार करके जिनदेवके सेवक बनना चाहिए। इसीमें तुम्हारा कल्याण है।

मुनिका उपदेश सुनकर वे लोग बोले--महाराज! यह बात तो आपने बड़े आश्चर्यकी कही कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि बड़े बड़े पुरुष भी जिनदेवको प्रणाम करते हैं। हमें इस पर विश्वास नहीं होता। यदि आप इस बातको सत्य करके दिखला देंगे तो हम सब लोग भी फिर जिनदेवको ही मानने लगेंगे। हमें फिर आप जैनी ही समझिए।

तब मुनिराजने भक्तामरके मंत्रोंकी साधनाके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सूर्य, कार्तिकेय आदि देवताओंको शिवमन्दिरमें बुलवाये और फिर उन्हें साथ लेकर वे जिनमन्दिर पहुँचे। उस समय उन सब देवोंने जिन भगवानकी पूजा की। यह देख कर उन लोगोंको बड़ा अचंभा हुआ।

उन्होंने फिर शिवधर्मकी मिथ्या वासनाको छोड़ कर जैनधर्म ग्रहण कर लिया । जैनधर्मकी बहुत ही प्रभावना हुई ।

इसके बाद ब्रह्मा आदि देवगण अपने अपने स्थान पर चले गए । इधर मुनिराज भी वहाँसे विहार कर गए । कारण धर्मोपदेश द्वारा जीवोंका हित करनेवाले साधु-महात्मा कभी एक स्थान पर स्थिर होकर नहीं रहते । गुरुओंकी पवित्र सगतिसे पापी प्राणी भी धर्म ग्रहण करनेका पात्र हो जाता है । इसलिए भव्य पुरुषोंको सदा गुरु–सगति करनी चाहिए ।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥ २२ ॥

हिन्दी–पद्यानुवाद ।

माएँ अनेक जनतीं जगमें सुतोंको
हैं, किन्तु वे न तुझसे सुतकी प्रसूता ।
सारी दिशा धर रहीं रविका उजेला,
पै एक पूरब दिशा रविको उगाती ॥

नाथ ! हजारों ही स्त्रियाँ पुत्रोंको जनती हैं, परन्तु आपके समान पुत्रको दूसरी माता न जन सकी । नक्षत्रोंको तो सब ही दिशाएँ धारण करती हैं, परन्तु देदीप्यमान् किरणोंवाले सूर्यको एक पूर्व दिशा ही जन्म देती है ।

मतिसागर मुनिकी कथा ।

उक्त श्लोकके मन्त्रकी आराधनाके प्रभावसे बडे बड़े अभिमानी विद्वान् क्षण मात्रमें पराजित कर दिए जाते हैं । उसकी कथा इस प्रकार है—

करना शुरू किया। जिधर देखो उधर ही कोई दाहज्वरके मारे चिल्ला रहा है, कोई शूल रोगसे त्राहि त्राहि कर रहा है, कहीं हैजा है, कहीं विषूचिका है, और कहीं चेचकका भयंकर रोग है। सब श्रावक-गण विपत्तिमें पड़ गये। उससे मुक्त होनेका वे कोई उपाय नहीं कर सके।

यह देख वे मुनि यक्ष-मन्दिरमें गए और अपने कमण्डलुको यक्षके कानमें लटका कर उसके सामने पाँव फैला करके सो रहे। यक्षने अपने अविनय करनेवाले मुनिको बहुत डराया, धमकियाँ दीं; पर वे उसकी कुछ परवा न कर सोते ही रहे। सियालसे हाथी नहीं डरा करते हैं। यह देख यक्षने ये सब बातें राजाको सूचित कीं। राजाने मुनि पर गुस्सा होकर कहा कि—जिस देवकी मैं पूजा-भक्ति करता हूँ, उसे अपमानित करनेकी किसमें हिम्मत है? इसके बाद उसने अपने नौकरोंको आज्ञा की कि जाओ, उस अविनयी पापी मुनिको अभी मार डालो। राजाकी आज्ञा पाकर हजारों नौकर हाथोंमें बड़ी बड़ी लाठियाँ लिए यक्षमन्दिर पहुँचे और निर्दयतासे मुनिको मारने पीटने लगे। पर आश्चर्य है कि वह मार मुनि पर न पड़ कर राजाकी रानी पर पड़ी।

इस घटनासे राजा बड़ा चकित हुआ। वह फिर अपने परिवारके साथ यक्ष—मन्दिर आया और मुनिके पावोंमें पड़ कर उनसे उसने क्षमा कर देनेके लिए प्रार्थना की। इतनेमें यक्षने भी प्रगट होकर मुनिराजको नमस्कार कर क्षमा माँगी। जिनकी जिनधर्म पर श्रद्धा है उनके पावोंमें देवता लोग अपना सिर झुकाया ही करते हैं। धर्मका इस प्रकार अचिन्त्य माहात्म्य देखकर राजा तथा और भी बहुतसे लोगोंने बुद्ध मतको छोड़ कर जिनधर्म ग्रहण किया। जैनधर्मकी खूब प्रभावना हुई। एकका आविर्भाव अर्थात् उत्पन्न होना और एकका तिरोभाव अर्थात् नष्ट होना वस्तुके ये निरंकुश दो धर्म ही हैं।

भक्तामर-स्तोत्रकी आराधनासे मतिसागर मुनिने जो धर्मकी प्रभावना की उसे देख कर भव्यजनोंको भी इस पवित्र स्तवनकी आराधनामें मन लगाना चाहिए। कारण 'धर्मो भवति कामदः' अर्थात् धर्म मनचाही वस्तुका देनेवाला है।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः॥२३॥

हिन्दी पद्यानुवाद।

योगी तुझे परम पूरुष है बताते,
आदित्यवर्ण मलहीन तमिस्त्रहारी।
पाके तुझे, जय करें सब मौतको भी,
है और ईश्वर नहीं वर मोक्ष-मार्ग॥

नाथ! तपस्वी जन आपको परम पुरुष कहते हैं, और अन्धकारसे परे होनेके कारण अथवा अन्धकार अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंके नष्ट हो जाने पर केवलज्ञान अवस्थामें भामण्डलसे देदीप्यमान होनेके कारण सूर्यके समान तेजस्वी कहते हैं, आपहीको अमल—राग-द्वेषादि कर्म-मल-रहित होनेसे निर्मल कहते हैं, और मन, वचन, कायकी शुद्धिसे आपकी आराधना कर वे मृत्यु पर विजय लाभ करते हैं। नाथ! सच तो यह है कि आपको छोड कर मोक्षका और कोई श्रेष्ठ मार्ग ही नहीं है।

आर्यनन्दी मुनिकी कथा।

इस श्लोकके मन्त्रकी जो पवित्र भावोंसे आराधना करते है, उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती। इसकी कथा इस प्रकार है—

भारतवर्षके प्रसिद्ध अवन्ति प्रान्तमें उज्जयिनी एक बहुत सुन्दर नगरी है। उसमें बड़े बड़े धनी रहते हैं। उनके पास ऐसे ऐसे अमोल रत्न हैं कि जिनकी सानीके रत्नोंका मिलना संसारमें दुर्लभ है। उसमें सेठ-साहूकारोंके बड़े बड़े ऊँचे और सुन्दर महल हैं। उन पर बहु-मूल्य वस्त्रोंकी ध्वजाएँ शोभा दे रही हैं।

उज्जयिनीके बाहर वनमें एक चण्डिका देवीका मन्दिर है। उसमें जीवोंकी बलि बहुत दी जाया करती है। इस कारण वह कहीं खून, कहीं मांसके ढेरों, कहीं हड्डियों, और कहीं मरे हुए पशुओंसे सदा व्याप्त रहता है। उसे देखते ही चित्त घबरा उठता है, उल्टी होने लगती है।

एक दिन शुद्ध चारित्रके धारक आर्यनन्दी मुनि विहार करते हुए उधर आ गए। संध्या हो जानेके कारण वे उस मन्दिरमें एक ओर ध्यान करनेको बैठ गए। उन्हें अपने मन्दिरमें ध्यान करते हुए देख-कर देवीने क्रोधसे उत्तेजित होकर मुनिको सैकड़ों दुर्वाक्य कहे और उन पर वह घोरसे घोर उपसर्ग करने लगी। इसके बाद उसने सिंह, व्याघ्र, सर्प, आदि भयंकर जीवोंकी सृष्टि कर मुनिको खूब डराया। उनपर वह तलवार चलानेको उद्यत हुई। वज्र गिराना उसने शुरू किया, घनघोर काले मेघोंकी घटाएँ दिखलाईं, और प्रचण्ड वायु बहाया। अपनी शक्तिभर उपद्रव करनेमें उसने कोई कसर नहीं की; परंतु तब भी वह मुनिराजको विचलित न कर सकी। कारण वे भक्तामरकी आराधना कर रहे थे, इसलिए जिनधर्म-भक्त देवीने आकर उपद्रवोंसे उनकी रक्षा करली। चण्डिका हार खाकर स्वयं मुनिराजके पाँवोंमें पड़ी और अपराधकी क्षमा करा कर बोली—भगवन्! आज्ञा कीजिए, मैं पालनेके लिए तैयार हूँ।

मुनिने कहा—"जैसा तुमने कहा वैसा यदि कर सकती हो तो आजसे तुम जीवोंकी हिंसा करना और कराना छोड़ कर दयाको स्वीकार करो और इसके साथ पवित्र सम्यक्त्वको ग्रहण करो।"

इसके बाद देवी मुनिकी आज्ञासे जीवहिंसाका परित्याग कर चली गई। इस प्रकार मंत्र-प्रभावसे देवतोंको भी आज्ञाकारी बनते देख-कर बहुतोंने सम्यक्त्व-पूर्वक जैनधर्म ग्रहण किया, बहुतोंने अपने चिर-सचित मिथ्यात्वका परित्याग किया। धर्मकी खूब प्रभावना हुई।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः॥ २४॥
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा-
त्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्-
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि॥ २५॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

योगीश, अव्यय, अचिन्त्य, अनङ्गकेतु,
ब्रह्मा, असंख्य, परमेश्वर, एक, नाना,
ज्ञानस्वरूप, विभु, निर्मल, योगवेत्ता,
त्यों आद्य, सन्त तुझको कहते अनन्त॥
तू बुद्ध है विबुध-पूजित-बुद्धिवाला,
कल्याण-कर्तृवर शंकर भी तुही है।
तू मोक्ष-मार्ग विधि-कारक है विधाता,
है व्यक्त नाथ! पुरुषोत्तम भी तुही है॥

वसन्त आया। वनमें फूल फूलने लगे। उनकी दिल लुभानेवाली सुगन्ध अपना साम्राज्य विस्तृत करने लगी। चारों ओरसे मत्त भौंरोंके झुण्डके झुण्ड आ-आ कर अपने राजाधिराज वसन्तको वधाइयाँ देने लगे। कोकिलाओंने वारांगनाओंका वेप लिया। सार यह कि जिधर आँख उठा कर देखो उधर ही सिवा राग-रंगके कुछ नहीं दिखाई पड़ता था।

ऐसे अपूर्व राग-रंगके समय जितशत्रु उससे कैसे वंचित रह सकते थे। अतएव वे भी अपनी सब रानियोंको लेकर वसन्तकी वहार लूटनेके लिए अपने स्वर्ग-सदृश सुन्दर उपवनमें गए। वहाँ वे रानियोंके साथ बड़े आनन्दके साथ क्रीड़ा-विलासका सुख भोग रहे थे कि, इतनेमें एक पापी व्यन्तरने उनके सब आनन्दको-सब सुखको किरकिरा कर दिया। एक साथ सब रानियोंके शरीरमें प्रवेश कर वह उन्हें बेहद्द कष्ट पहुँचाने लगा। यह देख कर राजा बड़े दुखी हुए। उन्होंने उसी समय बड़े बड़े मांत्रिकों और तांत्रिकोंको बुलाया। बहुत कुछ प्रयत्न किया गया, पर किसीसे रानियोंको आराम न पहुँचा। दैव-दोष बहुत ही कठिनतासे दूर होता है।

यह सब हो ही रहा था कि एक मनुष्यने कहा-महाराज! शान्तिकीर्ति मुनि इस विषयके अच्छे जाननेवाले हैं। आप उन्हें बुलवा कर महारानियोंको दिखलाइए। असंभव नहीं कि उनके द्वारा बहुत शीघ्र ये सब उपद्रव मिट जायँ। यह सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय अपने प्रतिष्ठित राजकर्मचारियोंको भेज कर जिनमन्दिरसे उन्हें बुलवाया।

मुनिराज आए। राजाने उन्हें सब हाल कह सुनाया। मुनिराजने यह कह कर कि, कोई चिन्ताकी बात नहीं, एक जलका लोटा मँगा-

चाया और उसके जलको मंत्र कर रानियोंकी आँखों पर छींटा। उनका जल छींटना था कि वह व्यन्तर चीख मार कर उसी समय भाग गया। जो प्रचण्ड मोह-शत्रुको भी नष्ट कर देते है, उनके रहते वेचारे व्यन्तरकी क्या हिम्मत जो वह उनके सामने ठहर सके। जो अग्नि बड़े बड़े पर्वतोंको देखते देखते जला कर खाक कर डालती है उसके सामने घास-फूसकी कौन गिनती है ?

मुनिराजका यह प्रभाव देख राजाने उनका बहुत उपकार मानकर कहा—भगवन् ! आप धन्य हे, आप ही सच्चे और सर्वोत्तम साधु हैं, आपका ज्ञान, आपका पाण्डित्य अपूर्व है, और वह धर्म भी संसारके सब धर्मोंमें अपूर्व है जिसे आप धारण किये हुए है।

इसके बाद राजाने मुनिसे पवित्र जिनधर्मकी दीक्षाके लिए प्रार्थना कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया। सच है—बिना महत्त्वकी बातोंको देखे कोई धर्मका ग्राहक नहीं होता। एक प्रतापी राजाको जिनधर्म धारण करते देख-कर और भी बहुतसे लोगोंने उसे स्वीकार किया। धर्मकी खूब प्रभावना हुई।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥ २६ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

त्रैलोक्य-आर्ति-हर नाथ ! तुझे नमूँ मै,
हे भूमिके विमलरत्न ! तुझे नमूँ मै।

हे ईश! सर्व जगके तुझको नमूँ मैं,
मेरे भवोदधि विनाशि, तुझे नमूँ मैं ॥

नाथ! आप त्रिभुवनके दुःखोंको नाश करनेवाले हैं, पृथ्वीके एक अत्यन्त सुन्दर भूषण हैं, तीनों लोकोंके ईश्वर हैं, संसाररूपी समुद्रके सुखानेवाले हैं-अर्थात् संसारका नाश कर भव्य जीवोंको मोक्ष प्राप्त करानेवाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार है।

धनमित्र सेठकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे धन-सम्पत्ति प्राप्त होती है। इसके प्रभावकी और धर्म पर विश्वास करानेवाली कथा इस प्रकार है:—

पटनामें एक धनमित्र नामका सेठ रहता था। पापके उदयसे दरिद्रता उसका पीछा न छोड़ती थी। एक दिन वह गुणसेन मुनिके पास गया और उन्हें प्रणाम कर उसने पूछा—स्वामी! कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे मैं इस दरिद्रता पिशाचिनीसे अपना पिण्ड छुड़ा सकूँ।

मुनिने उससे कहा—भाई! लक्ष्मीका होना न होना अपने पुण्य-पापके आधीन है। पर इतना जरूर है कि धर्म-सेवनसे पाप नाश होकर पुण्यका बंध होता है। वही पुण्य लक्ष्मीकी प्राप्तिका भी कारण है। इसलिए तुम भक्तामर—स्तोत्रकी सदा पवित्र भावोंसे आराधना और 'तुभ्यं नमस्त्रि' इस श्लोकके मंत्रका नित्य ही प्रातःकाल ऋषभनाथके चैत्यालयमें जाप किया करो। इसके साथ यह बात सदा याद रखना कि परस्त्रियोंको अपनी माता-बहिनके समान मानना। कभी चित्तमें विकार उत्पन्न न होने देना। नहीं तो सिवा हानिके और कुछ हाथ न लगेगा।

मुनिके उपदेशसे धनमित्रने वैसा ही करना शुरू किया। उसे मंत्रकी आराधना करते करते कोई छह महीना बीत गए। एक दिन धनमित्र अपने घरसे जिन-मंदिरको जा रहा था। रास्तेमें उसे एक बहुत

सुन्दर युवती, जो उर्वशीको भी लज्जित करती थी, मिली। वह धनमित्रसे बोली—

प्यारे! मैं तुम्हारी बहुत प्रशंसा सुना करती हूँ। आज भाग्यसे मुझे तुम्हारे दर्शन भी होगए। मेरा जीवन आज सफल हुआ। मैं जैसा सुनती थी, उससे भी कहीं बढकर मैंने तुम्हें पाया। प्यारे! अब तुम मुझे अपनी जीवन-संगिनी बना कर मेरा मनोरथ सफल करो, और मेरी बहुत कालकी साधको मिटाओ। इस प्रकार प्रतिदिन सबेरे उठ कर मंत्र-जाप, स्तवन-पाठ आदिके द्वारा अपनी आत्माको व्यर्थ कष्ट पहुँचानेसे कोई लाभ नहीं है। मेरे पास अटूट धन है। अपनी सैकड़ों पीढियाँ उसे बैठी बैठी खाया करेंगी तब भी उसका छोर नहीं आनेका। उसे भोगिए और जीवन सफल कीजिए। बेचारे लोगोंको स्वार्थी साधुओंने खूब ही अपने मायाजालमें फँसा रक्खा है—ठग रक्खा है। वे उन्हें परलोक और पापका भय दिखा दिखा कर सब बातोंसे वंचित रखते हैं। सच तो यह है कि न पाप है और न पुण्य है, न परलोक है और न आत्मा है। इस शरीरको छोड कर कोई जुदा आत्मा नहीं है जिसके लिए सब सुख—सब आनन्द पर पानी फेर कर दुःख उठाया जाय! बेचारे लोगोंको इन भिखमंगोंने बहका रक्खा है। इस कारण वे पाप-पुण्यसे डर कर सदा दुःख ही दुःख उठाया करते हैं।

युवतीके ऐसे पाप-पूर्ण वचनोंको सुन कर बेचारा धनमित्र काँप उठा। उसने अपने दोनों कानोंको हाथोंसे मूँद कर कहा—पापिनी! ऐसे दुर्गतिमें लेजानेवाले वचन कहते तुझे लज्जा नहीं आती? तू नहीं जानती, कि मुझे परस्त्री-त्यागव्रत है और तू परस्त्री है। तुझे तो छूलेनेसे भी मुझे महापाप लगेगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि बडे बडे राजे महा-राजे इसी परस्त्रीके पापसे नरक गए हैं? रावण तो इसी पापके

कारण मारा ही गया। चल, हट यहाँसे! मुझे तेरी चाह नहीं। तू जानती है कि मैं अपने गुरुके दिये व्रत पर कितना दृढ़ हूँ! चाहे मेरे प्राण भी चले जायँ, पर मैं व्रतको कभी नहीं छोडूँगा। मैं समझता हूँ कि प्राणोंके नष्ट होनेका दुःख उसी क्षण होता है, पर व्रतभंगका दुःख भवभवमें भोगना पड़ता है। संसारमें अनेक भवोंको कष्टके साथ विता कर बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुए शीलरूपी अमोल रत्नको सत्पुरुष तुच्छ धन-सम्पत्तिके साथ नहीं बेंच दिया करते हैं।

दूसरे, तूने जो परलोक, पुण्य, पापको कोई चीज नहीं बतलाया, यह भी तेरा भ्रम है। जान पड़ता है तुझे अभी दुर्गतियोंमें खूब सड़ना है। इसी कारण ऐसी निडर होकर बक रही है। यदि परलोक, पुण्य, पाप कोई वस्तु न होती तो हम जो प्रतिदिन अपनी आँखोंसे एकका मरना, एकका उत्पन्न होना, एक धनी, एक निर्धन, एक सुखी, एक दुखी, एक रोगी, एक निरोगी आदि देखते हैं, यह सब क्या है? इन बातोंके देखते हुए परलोक आदिका अभाव नहीं माना जा सकता; किन्तु सद्भाव ही स्वयं-सिद्ध है।

युवतीने धनमित्रके उत्तरको सुन कर बहुत प्रसन्न होकर कहा—धनमित्र! मैं एक अमराँगना हूँ। मैं तो केवल तेरी परीक्षाके लिए आई थी। मैंने तुझे तेरे संकल्पपर बहुत दृढ़ पाया। इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। जो तुझे चाहिए वह माँग, मैं देनेको तैयार हूँ। धनमित्रने लज्जित होते हुए कहा—देवी! यदि मुझ पर तुम्हारी कृपा है, तो मुझे कुछ धन प्रदान कर मेरी दरिद्रता नष्ट कर दो; कारण संसारमें बहुतसे पदार्थोंके रहते हुए भी प्यासा तो जल ही माँगेगा। देवीने 'तथास्तु' कह कर कहा—अच्छा धनमित्र! अपने कोठोंको आज तुम लकड़ियोंसे भर देना, वे सब सोनेके हो जायँगे। देवीके कहे माफिक

धनमित्रने बहुतसे कोठोंको लकड़ियोंसे भर दिए। प्रात काल जब उसने उन्हें देखा तब वे सब सोनेसे भरे मिले। धनमित्र यह देख कर बहुत आनन्दित हुआ। सच है, पुण्यवानोंके लिए धनका लाभ कुछ कठिन नहीं।

अब धनके प्रभावसे धनमित्र राजमान्य हो गया। लोग उसे कुबेर कहने लगे। वह सबमें प्रतिष्ठित गिना जाने लगा। जिस पर लक्ष्मीकी कृपा होती है उसे संसार-मान्य होनेमें कुछ देर नहीं लगती।

धनमित्रने धन पाकर उसका उपयोग भी अच्छे कामोंमें किया। उसने बड़े बड़े विशाल जिनमन्दिर बनवाए, उनकी प्रतिष्ठा करवाई, विद्यालय खोले, अपने गरीब भाइयोंकी आशाएँ पूरी की, खूब दान दिया और साथ ही अपना नाम अमर किया।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥ २७॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

आश्चर्य क्या गुण सभी तुझमें समाए,
अन्यत्र क्योंकि न मिली उनको जगा ही।
देखा न नाथ! मुख भी तव स्वप्नमें भी,
पा आसरा जगत्का सब दोषने तो॥

मुनीश! यदि सम्पूर्ण गुणोंने आपका आश्रय लिया—आपमें ऐसा कोई स्थान सूना नहीं जहाँ गुणोंने अपना स्थान न किया हो तो इसमें आश्चर्य क्या? क्योंकि नाना प्रकार आश्रय पाकर गर्वसे मस्त हुए दोषोंने तो आपको स्वप्नमें भी नहीं देख पाया।

हरि राजाकी कथा ।

जो भव्य पवित्र भावोंसे इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करते हैं, उन्हें मनचाही वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । इसकी कथा इस प्रकार है:—

महासिंधु गोदावरीके किनारे पर बानापुर नामका एक बहुत सुन्दर नगर है । वह अपनी बढ़ी हुई सम्पत्तिसे स्वर्गको भी नीचा दिखाता है । उसके राजाका नाम हरि है । वे रूप-गुण-वैभवमें इन्द्र-सदृश हैं। उन्हें सब सुख-सामग्री प्राप्त होने पर भी इस बातका अत्यन्त दुःख है कि उनके पुत्र नहीं है । पुत्रकी चिन्ताके दुःखने उनके सब सुखोंको किरकिरा कर दिया है ।

इस चिन्ताके मारे राजा सदा उदास और हताश रहने लगे । उनका किसी काममें चित्त नहीं लगता था । उन्हें इस तरह खेदित देख कर एक दिन राज-पुरोहितने उनसे प्रार्थना की कि राजराजेश्वर ! आप एक साधारण बातके लिए इतने चिन्तित क्यों हैं ? मैं आपको एक उपाय बतलाता हूँ, उसे आप कीजिए । उससे आपका मनोरथ अवश्य पूरा होगा । वह उपाय यह है, कि आप प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके दर्भासन पर बैठ मन-वचन-कायकी पवित्रताके साथ शंकरकी आराधना किया करें । इस प्रकार कुछ दिनों तक करनेसे शंकर प्रसन्न होकर आपको मनचाहा वर प्रदान करेंगे । उससे आपको अवश्य पुत्र-लाभ होगा ।

पुरोहितके कहे अनुसार राजाने शंकरकी आराधना शुरू की और बहुत दिनों तक की भी; परन्तु उससे न तो शंकर प्रसन्न हुए और न पुत्र ही हुआ । कुदेवोंकी पूजासे ही यदि मनचाहा फल मिल जाया करे, तो फिर सुदेवोंको कौन पूछेगा ? और कौन उनकी पूजा-भक्ति

करेगा ? कुवैद्यों द्वारा ही यदि रोग नष्ट हो जाय, तो ससारमें फिर सुवैद्योंकी कुछ जरूरत न रहे। पर ऐसा नहीं होता।

सयोग-वश एक दिन राजाको मुनिचन्द्र नामक मुनिके दर्शन हो गए। राजाने उन्हें प्रणाम कर पूछा—महाराज! मेरे पुत्र नहीं होता, इसकी मुझे दिनरात चिन्ता रहती है। बतलाइए मुझे पुत्रका मुँह देखनेको मिलेगा या मेरे बाद मेरे कुलकी ही समाप्ति हो जायगी ?

मुनिने कहा—राजन्! अपने अपने कर्मोंका फल सभीको भोगना पडता है। वह तुम्हें भी भोगना पडे तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि पापका फल बिना भोगे नहीं छूटता। पर हाँ, वह पाप, पुण्य और धर्मके द्वारा नष्ट हो सकता है। इसलिए तुम ' को विम्मयोत्र ' इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करो। सभव है धर्मके प्रभावसे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जाय। यह कह कर मुनिने राजाको मत्र सिखा दिया। राजा मुनिकी कृपा लाभ कर बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद मुनिको प्रणाम कर वे अपने महल पर लौट आए।

राजाने मत्रकी आराधना शुरू करदी। कुछ दिन बीतने पर एक दिन देवीने आकर राजाको एक स्वर्गीय फूलोंकी माला देकर कहा—इस मालाको अपनी रानीके गलेमें पहना कर उसके साथ सहवास करना। इसके प्रभावसे तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्ति होगी। यह कह कर देवी अन्तर्ध्यान हो गई।

कुछ समय बीतने पर रानीने पुत्र-रत्न प्रसव किया। यह देख राजाको बहुत आनन्द हुआ। सारे शहरमें खूब उत्सव मनाया गया। खूब दान दिया गया। दीन-दुखियोंकी आशाएँ पूरी की गई। पुत्र-जन्म वैसे ही प्रसन्नताका कारण होता है, फिर सब तरह निराश हुएके यहाँ यदि पुत्र-जन्म हो, तब तो उसके आनन्दका पूछना ही क्या !

भक्तामर-स्तोत्रका अचिंत्य प्रभाव है । उससे पुत्र-प्राप्ति होती है, स्वर्ग-प्राप्ति होती है और संसारमें ऐसी कोई बात नहीं रह जाती जो उसके प्रभावसे प्राप्त न हो सके । यह जान कर भव्य पुरुषोंको इसकी आराधना अवश्य करते रहना चाहिए । इस प्रकार मुनिके कहे अनुसार पुत्र-लाभ देख कर राजाकी मुनि पर खूब श्रद्धा हो गई। इसके बाद उनने जैनधर्म भी स्वीकार कर लिया । उनकी देखा-देखी और भी बहुतोंने पवित्र जैनधर्मकी शरण ली ।

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

नीचे अशोक तरुके तन है सुहाता,
तेरा विभो ! विमल रूप प्रकाशकर्ता;
फैली हुई किरणका, तमका विनाशी,
मानों समीप घनके रवि-बिम्ब ही है ॥

प्रभो ! जिसकी किरणें ऊपरकी ओर फैल रही हैं ऐसा आपका उज्ज्वल शरीर उन्नत अशोक वृक्षके नीचे बहुत ही सुन्दर जान पड़ता है; मानों जिसकी किरणें सब दिशाओंको आलोकित कर रही हैं ऐसा अन्धकारको नाश करनेवाला सूर्यबिम्ब मेघोंके आस-पास शोभ रहा हो ।

रूपकुंडलाकी कथा ।

इस काव्यके मंत्रकी आराधना करनेसे शोक नष्ट होता है और रोगादिकका नाश होकर शरीर सुन्दर हो जाता है । इसकी कथा नीचे लिखी जाती है ।

धारा नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है। वह बहुत समृद्धिशालिनी और गोपुरोंसे शोभित है। उसमें सत्पुरुषोंका निवास है। इन सब शोभाओंसे वह पृथ्वीकी तिलक-सदृश जान पडती है। उसके राजाका नाम भूपाल था। वे प्रजाका पालन नीति और प्रेम पूर्वक करते थे। उनकी रानीका नाम पृथ्वीदेवी था। वह शील-सौभाग्यादि गुणोंसे ससारका एक उज्ज्वल महिला-रत्न थी। इनकी राजकुमारीका नाम रूपकुण्डला था। वह जैसी सुन्दर थी, वैसी विदुषी भी थी। हरएक तरहकी कलाओंको बहुत अच्छा तरह जानती थी। इसके साथ उसमें एक बुराई भी थी। वह यह कि उसे अपनी विद्या, अपने सौन्दर्यका बहुत अभिमान था। अभिमानके मारे वह ससारको तुच्छ समझती थी और चाहे कोई कैसा ही गुणवान् हो, सुन्दर हो, वह सबकी निन्दा ही किया करती थी।

एक दिन रूपकुडला अपनी सखियोंके साथ वनक्रीडा करनेको गई। वहाँ उसने एक दुबले-पतले और पसीने आदिके निकलनेके कारण कुछ मलिन शरीर हुए पिहिताश्रव मुनिको देखा। उन्हें देख कर रूपकुण्डला नाक-भौं सिकोड कर मुनिकी निन्दा करने लगी। वह अपनी सखियोंसे बोली——सहेलियो! देखो, यह मुनि कैसा अपवित्र है। जान पडता है यह कभी नहाता-धोता नहीं है। देखो, कैसा पशुकी तरह नगा खडा हुआ है। इसे कुछ भी लाज-शर्म नहीं है! बड़ा ही नीच है। मैंने तो कभी ऐसा निर्लज्ज पुरुष नहीं देखा। इसे देखकर मुझे बड़ी घृणा होती है। चलो यहाँसे जल्दी चलो। मुझसे यहाँ खड़ा नहीं रहा जाता। इस प्रकार मुनिकी खूब निंदा करने पर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। इस कारण चलने समय वह उन्हें पत्थरोंसे भी मारती गई।

सच्चे देव वे हैं, जिनमें राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, भूख, प्यास, आदि दोष नहीं हैं, जो सारे संसारके जाननेवाले अर्थात् सर्वज्ञ हैं, सबके हितका उपदेश करनेवाले हैं, जिन्हें इन्द्र चक्रवर्ती आदि बड़े बड़े पुरुष भी सिर झुकाते हैं, और जिनसे सब अपने कल्याणकी चाह करते हैं।

सच्चे गुरु वे हैं जिन्हें इन्द्रियोंकी लालसा कभी छू भी नहीं पाती—संसारी जीवोंकी तरह वे इन्द्रियोंके गुलाम न बन कर उन्हें अपना गुलाम बनाए हुए हैं; जिन्होंने इन्द्रियोंको अपने वश कर लिया है; जिनके पास न धन-दौलत है, न चाँदी सोना है, न हीरा-माणिक है, न घर-बार है, न स्त्री-पुत्र है अर्थात् वे सबसे मोह छोड़े रहते हैं; और जो न धंदा-रोजगार करते हैं, न घर-बार बसाते हैं, न खेती-बाड़ी करते हैं; किन्तु सदा शान्त-चित्त रह कर आत्मानुभव, शास्त्राभ्यास, ध्यान आदि किया करते हैं, जिनके लिए तलवार चलानेवाला शत्रु और उपकार करनेवाला मित्र, निन्दा करनेवाला, स्तुति करनेवाला, तथा महल, मसान, काँच, कंचन-ये सब समान हैं—जिनकी सब पर समान दृष्टि है।

सच्चा शास्त्र वह है जिसे सर्वज्ञने बनाया है; क्योंकि सर्वज्ञके बिना पदार्थोंका ठीक ठीक वर्णन कोई नहीं कर सकता; और न भूत भविष्यत्, वर्तमानके जाने बिना पदार्थोंका वर्णन ही हो सकता है। इसलिए सर्वज्ञ ही सच्चा शास्त्र रच सकता है। इसके सिवाय जिसमें किसी तरहका विरोध न आता हो—जैसाकि अन्य शास्त्रोंमें कहीं तो देखा जाता है कि '**मा हिंस्यात् सर्वभूतानि**' अर्थात् किसी जीवकी हिंसा मत करो; और कहीं इसके विरुद्ध देखा जाता है—जैसा कि "**न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा**

भूतानां निवृत्तिस्तु महाफलम् ॥" अर्थात् न मास खानेमें दोष है, न शराब पीनेमें दोष है, और न व्यभिचार सेवनमें दोष है, किन्तु ये तो जीवोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ है। हाँ, यदि ये छूट जायँ तो अच्छा है। इस प्रकारका विरोध न हो। अर्थात् जो स्वार्थियोंका रचा हुआ न होकर नि स्वार्थी, परम वीतरागी, और ससारके हित करनेवाले महा-पुरुषोंका रचा हुआ हो और जिसमें कुमार्गो—ससारमें भ्रमण करनेवाले मिथ्यामार्गोका खण्डन किया जाकर जीवोको सुखका रास्ता बतलाया गया हो। इसके सिवा जिसे न तो कोई वादी प्रतिवादी बाधा पहुँचा सके और न जिसमें प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणसे विरोध हो। वही सच्चा और हितैषियों द्वारा आदर करने योग्य शास्त्र है।

तत्व सात है:—

जीव—जिसमें चेतना—दर्शन और ज्ञान पाए जायँ।

अजीव—जिसमें ज्ञान और दर्शन न हों—जो जड हो।

आस्रव—जो कर्मोंके आनेका रास्ता हो अर्थात् जिसके द्वारा कर्म आते हों।

बंध—आत्मा और कर्मोंके प्रदेश परस्पर एक क्षेत्रावगाह होकर—परस्पर मिल कर जो एकत्व-बुद्धिको उत्पन्न करते है वह बन्ध है। जिस भाँति चाँदी और सोनेको मिला कर गलानेसे अथवा दूधमें पानी मिला देनेसे वे भिन्न भिन्न दो पदार्थ होने पर भी एक जान पडते हैं, उसी भाँति आत्माके साथ कर्मोंका जो एकत्व-सम्बन्ध हो जाता है, जिससे उनका जुदापन नहीं जान पडता, वही बध है।

संवर—आते हुए कर्मोंके रुक जानेको सवर कहते हैं। जैसे नाँवमें कहीं छेद होनेसे उसके द्वारा जो जल आता रहता है और उस छेदको बन्द कर देनेसे उस जलका आना रुक जाता है,

वैसे ही मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय आदिके द्वारा जो कर्म आते हैं, उन्हें दशलक्षण धर्म, बारह भावना, तीन गुप्ति, पाँच समिति आदि द्वारा रोक देना, यह संवर है।

निर्जरा—पूर्वके बँधे कर्मोंका एक देश अर्थात् कुछ अंश नष्ट होनेको निर्जरा कहते हैं।

मोक्ष—कर्मोंके पूर्ण-रूपसे नष्ट हो जानेको मोक्ष कहते हैं। जो जीव मोक्ष चले जाते हैं, वे फिर संसारमें नहीं आते। संसारके कारण कर्मोंको उन्होंने नष्ट कर दिया है। वे अनन्त काल तक वहीं रहेंगे और अपने स्वभावसे उत्पन्न होनेवाले अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-सुख, और अनन्तवीर्य आदि परमोत्कृष्ट गुणोंको भोगते रहेंगे।

इस प्रकार देव, गुरु, शास्त्र, और सात तत्वोंके श्रद्धान अर्थात् निश्चय करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अब धर्मका स्वरूप सुन। धर्म दो प्रकार है। एक मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थधर्म। मुनिधर्म महाव्रतरूप है और श्रावकधर्म अणुव्रतरूप है। मतलब यह कि जैसे हिंसाका त्याग मुनि और श्रावक दोनोंके होता है, पर उसमें विशेषता यह है कि मुनि तो त्रस और स्थावर—इन दोनों हिंसाका मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदनासे त्याग करते हैं, और श्रावक केवल संकल्पी त्रस-हिंसाका त्याग करते हैं और अपने योग्य स्थावर-हिंसा करते हैं। कारण बिना ऐसा किये गृहस्थाश्रम चल ही नहीं सकता।

गृहस्थोंके पाँच अणुव्रत—

अहिंसाणुव्रत—मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदनासे किसी जीवकी अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, और पँचेन्द्रिय जीवोंकी इस संकल्पसे कि 'मैं इसे मारूँ' न स्वयं हिंसा करे, न किसी

दूसरेसे करावे और न हिंसा करनेवालोंकी कभी प्रशंसा करे; यह अहिंसाणुव्रत है।

सत्याणुव्रत–जिस झूठके द्वारा लोग बुरा कहें, निन्दा हो और अपना विश्वास उठ जाय–कोई अपने वचनोंकी प्रतीति न करे, उसे कभी न बोलना चाहिए, और न दूसरोंसे बुलवानी चाहिए। इसके सिवा ऐसा सत्य भी बोलना उचित नहीं, जिसके द्वारा बिना कारण किसीके प्राण नष्ट हों, यह सत्याणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत–किसीके रखे हुए, गिरे हुए, भूले हुए, धनको न स्वय ले और न उसे उठा कर दूसरोंको दे, यह अचौर्याणुव्रत है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत–पुरुष अपनी स्त्रीके सिवा अन्य स्त्री-मात्रको माता बहिनके समान गिनें। इसी भाँति स्त्रियाँ अपने पतिके सिवा अन्य पुरुष-मात्रको पिता-भाईके समान समझें, यह ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इसीका दूसरा नाम स्वदारसंतोषव्रत भी है।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत–धन-धान्य, दासी-दास, चाँदी-सोना आदि वस्तुओंकी मर्यादा करना अर्थात् अपने संतोषके अनुसार मै इतना धन रखता हूँ, इतना सोना-चाँदी रखता हूँ, इतने नौकर-चाकर रखता हूँ, इस प्रकार परिमाण करनेको परिग्रहपरिमाणाणुव्रत कहते हैं। अर्थात् जिससे अपनी लोकयात्रा सुखसे बीते, धर्मका शांतिके साथ साधन हो, और किसी तरहकी आकुलता न हो, उतना धन-धान्य आदि रख कर विशेष तृष्णाको घटाना चाहिए। यह व्रत लोभ घटाने और निराकुलता बढानेके लिए है। और लोभ तब ही घटता है जब तृष्णा नष्ट करदी जाती है। इसलिए सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिए परिग्रह-प्रमाणाणुव्रतका पालन करना आवश्यक है।

पुत्रि ! इन पाँच अणुव्रतोंको तू धारण कर। व्रत तो और भी हैं; पर अभी तेरे लिए ये ही उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त इतना और करना कि सुपात्रोंको सदा दान देना, रात्रिमें कभी भोजन न करना, कंदमूल और अचार न खाना, तथा ऐसी कोई वस्तु न खाना जिसका स्वाद बेस्वाद हो गया हो; और न कभी चमड़ेमें रखा हुआ घी, तेल, जल आदि खाना और पीना। ये सब बातें अहिंसाणुव्रत पालनेवालेके लिए बहुत आवश्यक हैं। इसलिए इनकी ओर सदा ध्यान रखना।

रूपकुण्डला इस प्रकार गृहस्थधर्मका उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुई। इसके बाद उसने और उसकी सखियोंने श्रावकधर्म ग्रहण भी कर लिया।

इसके सिवा मुनिराजने उसे भक्तामर-स्तोत्रके 'उच्चैरशोक' इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करना बतला दिया।

घर पर आते ही रूपकुण्डलाने और उसकी सखियोंने विधिके अनुसार मंत्रकी आराधना करना शुरू करदी। कुछ दिनों बाद मंत्रके प्रभावसे उन सबका शरीर पहलेसे भी कहीं बढ़कर सुन्दर हो गया। यह देख वे बड़ी प्रसन्न हुईं। सच है धर्मके प्रभावसे क्या नहीं होता?

रूपकुण्डलाका शरीर सुन्दर हो गया, और वह सुखसे रहने भी लगी; परन्तु उसके हृदयमें यह खटका सदा बना रहता था कि मैंने जो मुनिराजकी निन्दा द्वारा अनन्त पाप उत्पन्न किया है, उसका अन्त कैसे होगा? और यदि इस भवमें वह नष्ट नहीं हुआ तो न जाने मुझे कुगतियोंमें कितना दुःख भोगना पड़ेगा? इसलिए उचित तो यही है कि मैं इस क्षणिक संसारसे मोह छोड़ कर कल्याणका मार्ग ग्रहण करलूं। उससे मेरे आत्माका कल्याण होगा और मुनिनिन्दाके पापका नाश होकर मुझे सुगतिकी प्राप्ति होगी।

यह विचार कर रूपकुण्डला सब बन्धु बाधवोंसे मोहपाश तुडा कर अपनी कुछ सखियोंके साथ साध्वी बन गई और फिर अपनी शक्तिके अनुसार खूब तप कर स्वर्गमें चली गई।

भक्तामर-स्तोत्रका इस प्रकार अचिंत्य और अश्रुतपूर्व महात्म्य देखकर बहुतसे अन्य धर्मियोंने जैनधर्म स्वीकार किया। बिना कारणके कार्य नहीं होता है।

ऋषियोंने जो यह लिखा है कि 'धर्मात्सर्वसुख नृणा' वह बहुत ही सत्य लिखा है। इसलिए जिन्हें अपनी आत्माको कुगतियोंके दु खोंसे बचा कर सद्गतिमें पहुँचाना है, जिन्हें शत सहस्रों आकुलताओंसे जर्जरित अपने जीवनको शान्ति-सुधा-धारा द्वारा अमर बनाना है और जिन्हें अनन्त-अगाध, ससार-समुद्र पार करके अनत, अविनश्वर, अखण्ड, अचिन्त्य मोक्ष-सुख प्राप्त करना है, उन्हें उचित है—उनका कर्त्तव्य है कि वे धर्मरूपी अमोल रत्नकी प्राप्तिसे अपने आत्माको रहित न होने दें। यह लाख बातकी एक बात है। इसे हृदयमें लाना चाहिए।

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः॥ २९॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

सिंहासन स्फटिक-रत्न जड़ा, उसीमे
भाता विभो! कनककान्त शरीर तेरा।
ज्यों रत्न-पूर्ण-उदयाचल शीशपे जा
फैला स्वकीय किरणें रवि-बिम्ब सोहे॥

हे भगवन्! रत्नोंकी किरणोंसे विचित्र सुन्दरता धारण करनेवाले सिंहासन पर सोनेके समान आपका निर्मल शरीर ऐसा सुन्दर जान पड़ता है, मानों उदयाचल पर्वतके शिखर पर सूर्यबिम्ब, जिसकी कि किरणें आकाशमें सब ओर फैल रही हैं, शोभता हो।

जयसेनाकी कथा।

जो जन इस श्लोकके मंत्रकी शुद्ध भावोंसे आराधना करते हैं वे रोगादि रहित होकर सुन्दर शरीरके धारक होते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है।

अंकलेश्वर नामक एक नगर है। उसके राजाका नाम जयसेन है। और उनकी रानीका नाम जयसेना है। राजा जैनी हैं, और रानी मिथ्यात्वकी पालन करनेवाली है।

एक दिन गुणभूषण मुनि आहारके लिए अंकलेश्वरमें आए। वे बड़े ज्ञानी थे और तप भी खूब करते थे। उससे उनका शरीर बहुत कृश हो गया था। राजाने उन्हें अतिशय श्रद्धा-भक्तिके साथ पवित्र आहार करा कर बहुत पुण्य बंध किया।

रानीको यह बहुत बुरा जान पड़ा। उसका मन जैन-साधुओंके सम्बन्धमें बहुत खराब रहा करता था। वह सदा कुगुरुओंकी प्रशंसा और जैन-मुनियोंकी निन्दा किया करती थी। उसने गुणभूषण मुनिकी भी निन्दा की। वह मन-ही-मन कहने लगी—यह कैसा धृष्ट है—निर्लज्ज है, जो न किसीके कुलीन घरको देखता है और न राजघरानेका विचार रखता है, किन्तु पशुओंकी तरह जहाँ तहाँ चला आता है। इसे घर घर भीखके लिए मारे मारे फिरते लज्जा भी नहीं आती। फिर इसकी यह कितनी बड़ी भारी मूर्खता है जो अत्यन्त सुलभतासे प्राप्त होनेवाले वनके पवित्र अन्न, शाक, कन्दमूल आदि तो खाता

नहीं, जो कि गुरुओंके खाने योग्य है, और घर घर भीख माँगता फिरता है। इस पापीका देखना ही पाप है, छूना तो दूर रहा। इस पर भी हमारे महाराजकी अंध-भक्ति बडी ही विलक्षण है। जो सच्चे और सभ्य गुरु आते है उन्हें तो कभी भोजनका एक टुकडा भी नहीं देते और ऐसे नगे, निर्लज्ज, असभ्य, भिखमगोकी भक्ति–पूजाके मारे गद्गद हो उठते है। मेरा वश पडता तो मैं इन्हें राज्यभरसे निकाल बाहर करती।

इस प्रकार रानीने शान्त–सीधे तपस्वी, शत्रु मित्र पर समान भाव रखनेवाले और परम वीतरागी मुनिकी खूब निन्दा की और आहार करके जाते समय उन्हें दो चार बुरे वचन भी सुना दिए। पर मुनिराज उसकी कुछ परवा न कर शान्तिके साथ वनकी ओर चल दिए।

इसके कुछ ही दिनों बाद मुनिकी निन्दाके फलसे रानीके कोढ़ निकल आया। उसकी सब रूप–सुधा विरूप–विषके रूपमें परिणत हो गई। सारा शरीर अग्निसे झुलसे हुएकी भाँति दीखने लगा। उससे बदबू निकलने लगी। पीब, खून आदि बहने लगा। हाथ-पाँव गल निकले। सच है–तीव्र पापका फल उसी जन्ममें मिल जाया करता है।

रानीकी थोडे दिनोंमें ऐसी हालत देख कर राजाको बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने रानीसे पूछा—सच तो कहो कि एकाएक यह क्या हो गया ?

रानी बोली—महाराज! उस दिन अपने यहाँ जो वे महातपस्वी और ज्ञानी मुनि आहारके लिए आए थे, मैंने उनकी बेहद्द निंदा कर उन्हें बुरे वचन कहे थे। जान पडता है उसी महापापका यह

फल उदय आया है। राजा बोले—पापिनी! तूने बहुत बुरा काम किया। तू नहीं जानती कि महामुनिकी निन्दा करनेसे नरकोंमें जाना पड़ता है। नरकका नाम सुनते ही रानी काँप उठी। वह उसी समय पालखीमें बैठ कर मुनिराजके पास पहुँची और उन्हें बड़ी भक्तिसे प्रणाम कर बोली—नाथ! मैंने अज्ञानके वश होकर आपकी बहुत निंदा की थी। मैं अपना बुरा-भला स्वयं नहीं जानती थी। यही कारण था कि मुझ पापिनीसे आपका गुरुतर अपराध बन पड़ा। नाथ! मुझपर क्षमा करके मेरी रक्षा कीजिए। क्योंकि साधु-लोग बड़े ही क्षमाशील होते हैं, और वे क्षमा ही करते हैं।

रानीने मुनिके उपदेशानुसार सम्यग्दर्शन-पूर्वक गृहस्थधर्म ग्रहण किया। इसके बाद रानी मुनिको नमस्कार कर जब अपने महल पर जाने लगी तब मुनिराजने उसे इतना और समझा दिया कि तुम कुछ दिनों तक प्रतिदिन हमारे पास आकर इस बीमारीकी शान्तिके लिए मंत्रा हुआ जल छिड़कवा जाया करो। रानीने वैसा ही किया। कुछ दिनों बाद उसकी हालत सुधरते सुधरते फिर जैसीकी तैसी हो गई। यह देख महाराज और रानी बहुत प्रसन्न हुए। धर्मके प्रभावसे रानीकी यह दशा देख कर बहुतसे लोगोंकी श्रद्धा जैनधर्म पर बढ़ गई और बहुतोंने पवित्र धर्मकी शरण ग्रहण की।

मुनि दया करके रानीसे बोले—देखो! धर्मसे राज्य मिलता है, धर्मसे सब सम्पत्ति प्राप्त होती है. धर्मसे गुरुतरसे गुरुतर पाप नष्ट होते हैं, धर्मसे स्वर्ग मिलता है, और धर्मसे ही मोक्ष मिलता है। इसलिए तुम सम्यग्दर्शन-पूर्वक गृहस्थधर्म स्वीकार करो। उससे तुम्हारा यह सब दुःख शान्त होगा। इतना कह कर मुनिने

उसे सम्यग्दर्शन, आठ मूलगुण, पॉच अणुव्रत, सात शील आदिका स्वरूप समझा दिया।

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥ ३०॥
छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥ ३१॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

तेरा सुवर्णसम देह विभो! सुहाता
है, श्वेत कुन्दसम चामरके उडेसे।
सोहे सुमेरुगिरि, काचन कातिधारी,
ज्यो चन्द्रकान्तिधर निर्झरके बहेसे॥
मोती मनोहर लगे जिनमे, सुहाते
नीके हिमांशुसम, सूरजतापहारी-
है तीन छत्र शिरपै अतिरम्य तेरे,
जो तीन-लोक-परमेश्वरता बताते॥

हे भगवन्! समवशरणमें आपके सोनेके समान सुन्दर शरीर पर जो इन्द्रादिक देव कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल चॅवर ढोरते हैं, उस समयकी सुन्दर शोभा ऐसी दीख पडती है मानों सुमेरु पर्वतके सुवर्णमय तटसे गिरते हुए झरनेकी चन्द्रमा-समान निर्मल जलकी धारा गिर रही हो।

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग-
त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥ ३२ ॥

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥ ३३ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

गंभीर नाद भरता दश ही दिशामें,
सत्संगकी त्रिजगको महिमा बताता,
धर्मेशकी कर रहा जयघोषणा है,
आकाश बीच बजता यशका नगारा ॥

गन्धोद-बिन्दुयुत मारुतकी गिराई,
मन्दारकादि तरुकी कुसुमावलीकी—
होती मनोरम महा सुरलोकसे है
वर्षा; मनो तव लसे वचनावली है ॥

नाथ, जिसने अपने गंभीर और मनोहर शब्दों द्वारा सब दिशाओंको शब्दमय कर दिया है, जो त्रिभुवनके प्राणियोंको उत्तम वस्तुओंके प्राप्त करानेमें समर्थ है, जो सद्धर्मराज अर्थात् परम भट्टारक तीर्थंकर भगवानकी संसारमें जय-घोषणा कर रहा है अर्थात् यह बतला रहा है कि पवित्र धर्मके अधीश्वर—प्रवर्त्तक आप ही हैं, और जो आपका सुयश प्रगट कर रहा है वह दुन्दुभि आकाशमें शब्द कर रहा है।

हे प्रभो! देवों द्वारा की गई जो मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात आदि कल्प-वृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धित जल-बिन्दु-मिश्रित दिव्य वर्षा मन्द मन्द वायुके साथ आकाशसे गिर रही है, वह ऐसी जान पड़ती है मानों आपके वचनोंकी या पक्षियोंकी श्रेणी हो।

मदनसुंदरीकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मन्त्रोंकी आराधनासे जीवोंको निरोगता प्राप्त होती है। उसके प्रभावको प्रकट करनेवाली और मिथ्या-मतकी नाश करनेवाली कथा इस प्रकार है —

अवन्ति देशमें उज्जयिनी प्रसिद्ध नगरी है। उसके राजाका नाम महीपाल था और उनकी रानीका नाम मदनसुन्दरी था। वह पूर्व जन्मके पापके उदयसे बहिरी थी और उसके शरीरसे सदा दुर्गन्ध निकलती रहती थी। उसके हाथ पाँवोंकी सब शोभा नष्ट हो गई थी। रूप भी उसका बहुत बुरा दीखता था। इतने पर भी राजाका उस पर पूर्ण प्रेम था। इस कारण उन्होंने उसके रोगकी शान्तिके लिए बहुत कुछ उपाय किये, बहुतसे मन्त्र-तन्त्र करवाये, पर किसीसे उसे आराम नहीं पहुँचा।

एक दिन किसी जैनीने राजासे कहा—महाराज! मेरे गुरु धर्मसेन मुनि इस विषयके बहुत अच्छे विद्वान् है। इसलिए आप उनसे महारानीका हाल कहिए। उन्होंने यदि इलाज करना स्वीकार कर लिया तब निश्चय समझिए कि महारानीको आराम हो जायगा। यह सुन कर राजा मुनिको बडे आदर-सम्मानके साथ नगरमें ले आए। इसके बाद वे महारानीको दिखला कर बडे विनयसे बोले—गुरुराज! यदि महारानीको आराम हो गया तो मैं नियमसे जिनधर्मको स्वीकार कर लूँगा।

इस पर मुनिराजने कहा—इस समय इस विषयमें मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता, कल सबेरे जो कुछ होगा वह कह दूँगा। यह कह कर वे वनमें चले गए। रातको वे सोए हुए थे। उस समय चक्रेश्वरीने आकर उनसे कहा—प्रभो! कुछ चिंता न कीजिए, धर्मके प्रभावसे सब

भारतवर्षमें बनारस प्रसिद्ध नगर है। विद्वानोंका वह घर है। जिधर देखो उधर ही ब्राह्मणोंके मुँहसे वेदध्वनि सुनाई पड़ती है। नगर बड़ा सुन्दर है। उसमें बड़े बड़े धनवान् रहते हैं। उनके गगन-चुम्बि महलोंको देख कर स्वर्गकी याद हो उठती है।

उसके राजाका नाम भीमसेन है। वे बुद्धिशाली और प्रजाके अत्यन्त प्यारे हैं। सुन्दरता उनके चरणोंकी दासी है। मानों संसारमें चन्द्रमा, कमल आदि जितने सुन्दर सुन्दर पदार्थ हैं, उन्हींके द्वारा उनके शरीरकी ब्रह्माने सृष्टि की है।

एक बार अकस्मात् उनके कोई ऐसा पापका उदय आया, जिससे उनकी सब सुन्दरता नष्ट हो गई; और उनका सारा शरीर अग्नि-ज्वालासे झुलसे हुएकी भाँति हो गया। उनके पास अनन्त वैभव, निष्कंटक राज्य, और एकसे एक बढ़कर सुन्दर स्त्रियां थी। पर वह सब एक रूपके बिना उन्हें निस्सार जान पड़ने लगा। उन्हें दिन-रात इसी विषयकी चिन्ता रहने लगी।

एक दिन उनने सुना कि नगरके बाहर एक तपस्वी मुनि आए हैं। उनका नाम पिहिताश्रव है। मुनिका आगमन सुन कर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उनकी वन्दनाके लिए गए। मुनिराजकी बहुत श्रद्धाके साथ उन्होंने पूजा, स्तुति की। इसके बाद समय देख कर उनने पूछा कि प्रभो! पहले मैं बहुत सुन्दर था। लोग मेरे रूपको देख कर मुझे कामदेव कहा करते थे; पर कुछ दिनोंसे न जाने एकाएक क्या हो गया, जिससे मेरी यह हालत हो गई। इसलिए कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे मेरी चिन्ता मिट कर मैं सुखी हो सकूँ। जैसा आप कहेंगे उसे करनेके लिए मैं तैयार हूँ। मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा कीजिए।

मुनिने कुछ सोच कर कहा कि आपको तीन दिन तक सवेरे, दोपहर और सायकाल यहाँ आना चाहिए। राजा मुनिकी आज्ञा स्वीकार कर और उन्हें नमस्कार कर अपने महल लौट आए। इसके बाद दूसरे दिनसे वे उनके पास तीनों समय जाने लगे। मुनिने 'शुभप्रभा' और 'स्वर्गापवर्ग' इन दो श्लोकोंकी आराधना की और उससे मन्त्रा हुआ जल राजा पर छींटना शुरू किया। मन्त्रके प्रभावसे राजाका शरीर पहलेकी भाँति सुन्दर हो गया। इससे उन्हें जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन करना असमव है। इसके बाद उनने मुनिराजके कहे अनुसार जीवहिंसा छोड कर दयाधर्म स्वीकार किया और साथ ही श्रावकोंके व्रत धारण किये।

इसके सिवाय उनने अपने देशभरमें यह मनादी पिटवा दी कि "मेरे राज्य भरमें कोई जीवहिंसा न करने पावे। फिर वह चाहे किसी धर्मका भी माननेवाला क्यों न हो। इसके विरुद्ध जो चलेगा वह राजाकी अकृपाका पात्र होकर राजदडका भागी होगा।

एक दिन राजा राजमहलपर बैठे बैठे प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे। इतनेमें एक बहुत बडे बादलका अपने आप सुन्दर बनाव बन कर उनके देखते देखते नष्ट हो गया। यह देख उन्हें ससारकी भी यही लीला जान पडी। वे उसी समय अपने पुत्रको राज्यभार सौंप कर वनके लिए रवाना हो गए और जिनदीक्षा स्वीकार कर तपश्चर्या करने लगे।

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

फूले हुए कनकके नव पद्मकेसे,
शोभायमान नखकी किरणप्रभासे—
तूने जहाँ पग धरे अपने विभो! हैं,
नीके वहाँ विबुध पङ्कज कल्पते हैं॥

हे जिनेन्द्र! सोनेके खिले हुए नवीन कमलोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले और चारों ओर फैली हुई नखोंकी किरणोंसे सुन्दर चरणोंको आप जहाँ रखते हैं वहीं स्वर्गके देव उनके नीचे कमलोंकी रचना करते हैं।

कामलताकी कथा।

जिनकी गर्दन टेढ़ी हो, जो कुबड़े हों, वे इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करके सुन्दर हो सकते हैं। इसका फल जिसे प्राप्त हुआ उसकी कथा नीचे लिखी जाती है:—

पटनामें धात्रीवाहन नामके राजा हो चुके हैं। वे बड़े नीतिज्ञ थे। प्रजा उन्हें बहुत चाहती थीं। वे भी प्रजाका अपनी संतानकी भाँति पालन करते थे। उनकी रानीका नाम धात्रसेना था। उनके सात कन्याएँ थीं, तब भी उनकी बड़ी इच्छा थी कि एक कन्या और हो जाय। जन प्रायः नई बातकी ही इच्छा करते हैं। महारानीकी इच्छा थी कि इस पुत्रीका भी मैं बड़े ठाट-बाटसे विवाह करूँगी। उसके व्याहमें बड़े बड़े राजे महाराजे आवेंगे। उससे मेरे राज्यकी बहुत प्रशंसा होगी।

भाग्यसे अबकी बार भी उनके पुत्री हो गई। सबको बड़ी खुशी हुई। खूब आनंद-उत्सव मनाया गया। गरीबोंको दान दिया गया। मनचाही वस्तुके प्राप्त होनेपर किसे प्रसन्नता नहीं होती।

राजकुमारी बड़ी सुन्दरी हुई। उसकी सुन्दरताको देख कर देवकुमारियाँ भी लज्जित होती थीं। जैसे जैसे उसकी उमर बढ़ती गई वैसे

वैसे सुन्दरता भी खूब बढती गई। उसकी सुन्दरताको दिन-दूनी और रात-चौगुनी उन्नति करते देख कर ईर्षालु गुणोंसे उसका अम्युदय—उत्कर्ष नहीं सहा गया। इसलिए वे भी खूब तेजीके साथ कुमारी पर अपना अधिकार जमाने लगे। मतलब यह कि राजकुमारी थोडी ही उमरमें त्रिभुवन-सुन्दरी और बडी विदुषी कहलाने लग गई। उसका नाम कामलता रक्खा गया। अपने नामको वह सचमुच सार्थक करती थी।

एक दिन राजकुमारी कामलता अपनी सखियोंके साथ पालखीमें बैठ कर कहीं जा रही थी। रास्तेमें उसे एक जिनमन्दिर पडा। वह बहुत ही सुन्दर और विचित्र कारीगिरीसे बनाया गया था। जो उसके नीचे होकर निकलता था, वह फिर उसे बिना देखे कभी आगे नहीं बढ सकता था। चाहे वह फिर जिनधर्मका द्वेषी ही क्यों न होता। उसकी सुन्दरता ही इस तरहकी थी जो सबके मनको मोह लेती थी। तब राजकुमारी भी उसे बिना देखे आगे कैसे बढ सकती थी। वह जिनधर्मसे द्वेष रखती थी तब भी मन्दिर देखनेको गई। मन्दिर देख कर उसे बहुत प्रसन्नता हुई। इसके बाद ज्यों ही उसकी नजर जिनप्रतिमा पर पडी त्यों ही वह नाक-भौं सिकोड कर अपने सखियोंसे बोली—सहेलियो! यह तो नगे देवकी मूर्ति है। भला, जब स्वय ही यह नगी है तब अपने भक्तोंको क्या देती होगी? वे लोग बडे मूर्ख हैं जो ऐसोंकी अपनी मनचाही वस्तुकी प्राप्तिके लिए पूजा करते है। जिसके पास स्वय भूपण नहीं, राज्य-विभव नहीं, धन नहीं, वह अपने भक्तोंको राज्य आदि कैसे दे सकेगी? मुझे इसका बडा आश्चर्य है। तब भी लोग इसे ही पूजते है। जिसकी पूजासे एक बारका भोजन मिलना कठिन है उससे धन आदिकी तथा इस अपार ससारसे उद्धार पानेकी

आशा करना केवल मूर्खता है। मैं तो इसका देखना भी पसन्द नहीं करती। यह कहकर कामलता मन्दिरके बाहर मंडपमें आ खड़ी हुई।

वहाँ एक शीलभूषण नामके मुनि बैठे थे। कामलता मुनिकी ओर इशारा करके बोली—सखी! देख मुझे इस नंगेमें मनुष्यत्वका कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता। यह पढ़ा लिखा कुछ नहीं है। केवल पेट भरनेके लिए यहाँ आकर बैठ गया है। देख इसका पेट पातालमें बैठा जा रहा है। बेचारा भूखके मारे मर रहा है। ये लोग मूर्ख श्रावक और श्राविकाओंको ही आनन्दके कारण हैं—वे ही इन्हें देख कर बहुत प्रसन्न होते हैं। और कोई तो इन्हें कौड़ीके मोल भी नहीं पूछता। यदि यह नग्नाटक—दिगम्बर मुनि नहीं हुआ तो मैं इसे बातकी बातमें शास्त्रार्थमें पराजित कर निरुत्तर कर दूँगी। इस प्रकार बहुत कुछ निन्दा करके कामलता बाहर आ गई और अपने मुँहको विकृत बना कर तालियाँ बजाने लगी।

उस समय कामलता गर्भिणी थी। जिन-निन्दा-जनित महापाप उसके उसी समय उदय आ गया। देखते देखते उसकी आँखें बैठ गईं। उसके दाँतोंमें बेहद कष्ट होने लगा। उसके मुँह और पाँव पाले पड़ गए। उसका रूप एक साथ डरावना-सा हो गया। वह कुबड़ी हो गई। उसे कुछ सुनाई न पड़ने लगा। उसके लिए अब यहाँसे महल तक जाना भी कठिन हो गया। उसके पाँव इधर उधर पड़ने लगे। आखिर वह गिर पड़ी। उसकी यह हालत देख कर सखियोंको बड़ी चिन्ता हुई। वे उसे पालखीमें बैठाकर राजमहल ले गईं।

राजमहलमें पहुँचते ही हाहाकार मच गया। उसके माता-पिता रोने-चिल्लाने लगे। बहुतसे वैद्य, मांत्रिक, तांत्रिक बुलवाए गए। खूब

उपचार किया गया, पर किसीसे राजकुमारीको आराम नहीं पहुँचा। वहीं कोई एक जैनी खडा हुआ था। उसने पूछा—अच्छा महाराज! यह तो बतलाइए कि कुमारी गई कहाँ थी? कुमारीकी एक सखीने कहा कि हम सब गई तो कहीं नहीं थीं, पर मार्गमें एक जिनमन्दिरको देखकर अवश्य आई है। वहीं पर इसकी यह दशा हो गई। उस जैनीने फिर पूछा कि इसने वहाँ कुछ बुराई—जिनभगवानकी निन्दा वगैरह तो नहीं की थी? क्योंकि जिन्हें जिनधर्म पर विश्वास नहीं होता वे प्रायः जिनप्रतिमा, जिनमुनि आदिके बाह्य चिह्नको देख कर उनकी निन्दा कर बैठते है। उसकी सखी स्पष्ट बातके बतानेमें पहले तो जरा हिचकी। पर फिर बातको दबा देनेसे विशेष लाभ न समझ उसने स्पष्ट कह दिया कि इसने जिनप्रतिमा तथा मुनिकी निंदा तो अवश्य की है। सुन कर उस जैनीने कहा—बस तो यह सब उसी निंदाका फल है। नहीं तो एकदम यह ऐसी कैसे हो जाती। तब राजाने कहा—जो होना था वह तो हो गया। अब बतलाओ कि क्या करना चाहिए? इस पर श्रावकने कहा—राजकुमारीको पीछी मुनिराजके पास लिवा ले जा कर जिनदेव तथा मुनिराजकी पूजन करवाइए और मुनिराजसे अपराध क्षमा करा कर उनसे इसका उपाय पूछिए। फिर वे जो कहें वैसा ही कीजिए।

इसके बाद महाराज उसी समय राजकुमारीको जिनमन्दिर ले गये। वहाँ उन्होंने उसके साथ साथ जिनभगवानकी पूजा की, पचामृताभिषेक किया, गरीबोंको दान दिया, अनाथोंकी सहायता की। इसके बाद वे मुनिराजके पास गये और उन्हें प्रणाम कर बोले—भगवन्! इस बालिकाकी रक्षा कीजिए। इसने बिना समझे—बूझे आप

सरीखे महात्माओंकी निन्दा की, उससे इसकी यह दशा हो गई। आप दयासागर हैं। इस बालिका पर क्षमा करके इसे बचाइए। आपका प्रेम जीव-मात्र पर समान है। इसलिए इसके अज्ञान पर ध्यान न देकर हमारे दुःखकी ओर देखिए। कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे इसे आराम हो जाय। क्योंकि महात्मा पुरुषोंका अभयदान संसारमें प्रसिद्ध है।

मुनिने कहा—राजन्! जो जैसा कर्म करता है उसका वैसा फल उसे भोगना ही पड़ता है। उसे इन्द्र, नरेन्द्र, जिनदेव आदि कोई नहीं मेट सकते। पर हाँ, धर्मसेवनसे पाप नष्ट होकर पुण्य-बन्ध होता है। इसलिए धर्म ग्रहण करना जीवमात्रके लिए आवश्यक है। यह कह कर मुनिराजने उन्हें श्रावक-धर्मका उपदेश दिया।

मुनिराजके उपदेशको सुन कर राजा बहुत खुश हुए। उन्होंने स्वयं श्रावक-धर्म स्वीकार कर कामलतासे भी उसके ग्रहण करनेको कहा।

इसके बाद मुनिराजने " **उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकान्ती** " इस श्लोकके मंत्र द्वारा जल मंत्र कर राजकुमारी पर छींटा। उनके जल छींटनेके साथ ही कामलताकी सब व्याधि चली गई। वह पहलेकी भाँति निरोग हो गई। यह देख वह मुनिराजके पाँवोंमें गिर कर बार बार अपना अपराध क्षमा कराने लगी। सच है, जब मनुष्य अपने अपराधको अपराध समझता है तब उसे बड़ा पश्चात्ताप होने लगता है। यही हालत राजकुमारी कामलताकी हुई।

इसके बाद कामलता और उसकी सखियोंने शुद्ध सम्यग्दर्शन, जो कि संसारके दुःखोंका समूल नाश करनेवाला है, ग्रहण किया। जिनधर्मके ऐसे प्रभावको देख कर अन्य बहुतसे लोगोंने भी जिनधर्म स्वीकार किया। धर्मकी भी बहुत प्रभावना हुई।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥ ३७ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

तेरी विभूति इस भाँति विभो ! हुई जो,
सो धर्मके कथनमें न हुई किसीकी ।
होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्र-हर्ता
होता न तेज रवि-तुल्य कहीं ग्रहोंका ॥

हे जिनेन्द्र! धर्मोपदेशके समय जैसी आपकी विभूति हुई थी वैसी अन्य देवोंमेंसे किसीकी नहीं हुई। सच है—गाढान्धकारको नाश करनेवाली जैसी सूर्यकी प्रभा होती है, वैसी प्रभा प्रकाशमान नक्षत्रोंकी नहीं होती।

जिनदासकी कथा।

इस श्लोकके मन्त्रकी आराधनासे धनका लाभ होता है। उसकी कथा इस प्रकार है.—

श्रीपुर नामका एक बहुत ही रमणीय नगर है। उसमें जिनदास नाम एक दरिद्री रहता था। पापके उदयसे उसके पासकी सब सम्पत्ति नष्ट हो गई। एक दिन जिनदास छहकायके जीवोंकी रक्षा करनेवाले अभयचद्र मुनिकी वन्दनाके लिए गया। बहुत श्रद्धा-भक्तिके साथ मुनिको नमस्कार कर वह धर्मोपदेश सुननेके लिए वहाँ बैठ गया। मुनिराजने उसे सुखके कारण गृहस्थ-धर्मका उपदेश दिया। जिनदास उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी शक्तिके अनुसार व्रत भी ग्रहण किए।

इसके बाद जिनदासने हाथ जोड कर मुनिसे कहा—प्रभो! कर्मोंका

मुझ पर बड़ा प्रकोप है। वे मेरी दिन पर दिन दशा बिगाड़ रहे हैं। मैं एक अच्छा गृहस्थ था, पर पापी कर्मोंने मुझे इस दशामें पहुँचा दिया। महाराज! इस पापिनी दरिद्रताको दिन-रात मेरे पीछे पड़ी रहनेसे मैं बहुत दुखी हूँ। इसलिए दया करके कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे यह नष्ट हो जाय।

मुनिने कहा भाई न तो कोई किसीको धन दे सकता है और न कोई किसीका धन हर ही सकता है। तब होता यह है कि जो जैसा कर्म करता है उसका उसे वैसा फल भी मिलता है। तुमने जन्मजन्मान्तरमें पाप किया होगा उसका तुम्हें भी यह फल मिला है। इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है। हाँ इतना अवश्य है कि पुण्य पापका नाश करनेवाला है, इसलिए तुम भी जिनभगवानकी सदा पूजा-स्तुति कर पुण्यका बन्ध करो। अपने भावोंको बुरी ओर न जाने देकर पवित्र रक्खो, सब जीवों पर दया करो, परोपकार करो, अपनेसे बन सके उतनी तन-मन-धनसे दूसरोंकी सहायता करो। ये ही सब पुण्यके कारण हैं।

इसके अतिरिक्त मैं तुम्हें एक मंत्र सिखलाए देता हूँ, उसे सदा जपते रहना। यह कह कर मुनिराजने "**इत्थं यथा तव विभूति-रभूज्जिनेन्द्र**" इस श्लोकका मंत्र और साधन-विधि बतला दी। इससे जिनदास बहुत प्रसन्न हुआ। सच है-धनप्राप्तिके उपदेशसे किसे प्रसन्नता नहीं होती?

एक दिन मंत्रके प्रभावसे देवी जिनदासको एक अमोल रत्न देकर बोली—"इस रत्नके प्रभावसे तुम्हारे शत्रु नष्ट होंगे और धनकी प्राप्ति होगी।" इतना कह कर देवी चली गई।

एक दिन जिनदास कहीं बाहर गया हुआ था। रास्तेमें उसे चोर मिल गए। रत्नके प्रभावसे उसने उन्हें बाँध लाकर राजाके सुपुर्द कर दिया। यह देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ। सच है, मणि-मत्र औषधिका कितना प्रभाव है इसे कोई नहीं बतला सकता। यह देख राजाका जिनदास पर इतना प्रेम हो गया कि उसने उसे अपना मत्री बना लिया और उसका हाल जान कर स्वय भी जैनी बन गया। बडोंकी सगतिसे किसे धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। अब जिनदासकी दशा बहुत सुधर गई। उसे धन भी मिल गया और राजसम्मान भी उसका खूब हुआ। अबसे वह सारे नगरका एक प्रधान प्रतिनिधि गिना जाने लगा। इसके बाद उसने कई विशाल जिनमन्दिर बनवाए, उनकी बडे ठाट बाटसे प्रतिष्ठा करवाई, दीन दुखियोंकी सहायता की, उन्हें दान दिया, और खूब उत्सव किया। देखो, जो पहले एक महा दरिद्र था, वही धर्म और जिनभक्तिके प्रभावसे कितना उन्नत हो गया। इसलिए भव्य पुरुषोंको सदा धर्म-पालन और जिन भगवानकी भक्ति करना उचित है। क्योंकि जो भक्ति ससारके दुखोंका नाश करती है। उसके द्वारा साधारण राज्य-विभूतिका मिलना तो कुछ कठिन ही नहीं है।

श्र्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

दोनो कपोल झरते मदसे सने है,
गुंजार खूब करती मधुपावली है,

ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे;
पावें न किन्तु भय आश्रित लोक तेरे॥

नाथ! आपके आश्रित जन उस उद्धत हाथीको सामने आता हुआ देख कर जरा भी भयभीत नहीं होते जिसका कि क्रोध, मद झरते हुए कपोलों पर मत्त भौरोंके गूँजते रहनेके कारण अत्यंत ही बढ़ रहा है। अर्थात् आपके आश्रित जन भयंकर संकटके समयमें भी निर्भय ही रहते हैं।

सोमराजकी कथा।

उक्त पद्यके मंत्रकी जो आराधना करते हैं, उन्हें फिर हाथी सरीखे भयंकर प्राणियोंसे भी कुछ भय नहीं रहता। इसकी कथा नीचे लिखी जाती है।

पटनामें सोमराज नामका एक राजपुत्र रहता था। पापके प्रबल उदयसे न तो उसके वंशमें कोई जीता बचा था और न राजसम्पत्ति ही बची थी। वह दरिद्री होकर बहुत दुःख पा रहा था।

एक दिन उसे वर्द्धमान मुनिके दर्शन हुए। मुनिने उसे विधिपूर्वक भक्तामर और उसके मंत्रोंकी आराधना सिखला दी। वह बहुत श्रद्धा भक्तिके साथ भक्तामरकी साधना करने लगा।

एक दिन उसने सोचा, मुझे ऐसी स्थितिमें यहाँ रहना उचित नहीं। कारण, भाई-बन्धु मुझे निरुद्यमी देख कर जला करते हैं और ताना मारा करते हैं। इस दुःखसे मर-मिटना कहीं अच्छा, पर ऐसे लोगोंके यहाँ रहना अच्छा नहीं। इस विचारके साथ ही वह विदेशके लिए रवाना हो गया।

घूमता-फिरता वह हस्तिनापुर पहुँचा। संयोग वश वहाँके राजाका पट्टहाथी साँकल-तुड़ा कर भाग छूटा था; और उन्मत्त होकर लोगोंको मारता हुआ उनके घरोंको गिराता फिरता था। उसके भयसे सारा नगर त्रस्त हो उठा। राजाने उसके पकड़वानेका बहुत प्रयत्न किया;

पर लाभ कुछ नहीं हुआ। जब बड़े बडे शूरवीर उसे न पकड सके –उससे हार मान गये–तब राजाने नगरमें मनादी पिटवाई कि " जो वीर इस उन्मत्त हाथीको वश करेगा उसे मै अपने राज्यका चतुर्थांश देनेके साथ साथ अपनी गुणवती नामकी कन्या भी विवाह दूँगा।"

इसी समय सोमराज इधर ही होकर जा रहा था। मनादी सुन कर उसने निश्चय किया कि जो हो एक बार इस हाथीको मै अवश्य वश करूँगा। इसके बाद वह " श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल–" आदि श्लोकके मत्रकी आराधना कर उस हाथीको पकडने चला। हाथीके पास पहुँच कर उसने बातकी बातमें उसे पकड कर अपने वश कर लिया। उसके पराक्रमको देख कर सब लोग बडे खुश हुए। इसके बाद उसने हाथीको राजाके सामने लाकर खडा कर दिया। राजा अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाले सोमराज पर प्रसन्न तो बहुत हुआ, पर उसके साथ बात-चीत करनेसे राजाको जान पडा कि वह विदेशी है। तब उसे बडी चिन्ता हो गई। राजाने सोचा कि इस विदेशीको, जिसके कि कुलस्वभावका कुछ ठिकाना नहीं, अपनी पुत्री मै कैसे देदूँ? यह तो उचित नहीं है। परन्तु एक बात है। वह यह कि धनसे स्त्री मिल सकती है, धनसे राज्य-सम्मान होता है और धनहीसे सब आनन्द मिलता है, इसलिए इसे खूब धन देकर विदा कर देना अच्छा है।

राजा तो इधर यह विचार कर रहा था और उधर राजकुमारी गुणवती सोमराजको अपने महलके झरोखोंमेंसे देख कर उस पर मोहित हो गई। क्योंकि सोमराजकी सुन्दरता कामदेवसे भी बढकर थी। ऐसी हालतमें राजकुमारीका उस पर मोहित हो जाना कोई आश्चर्यकी

बात न थी। जिस दिनसे राजपुत्रीने सोमराजको देखा उसी दिनसे उसकी हालत बहुत ही बिगड़ चली। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। उसका मन किसी प्रकारके विनोदमें न लगता था और न भूषण वस्त्रोंके पहरनेमें लगता था। यह देख कर राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उसने वैद्यों, मांत्रिकों और तांत्रिकों द्वारा उसका बहुत कुछ इलाज करवाया, पर उसे किसीसे आराम नहीं पहुँचा। सच है, जिनके मनको काम अधीर बना डालता है उन्हें तब तक चैन नहीं पड़ता जब तक कि उन्हें अपनी प्यारी वस्तु प्राप्त न हो—वही उनके कठिन काम-रोगकी औषधि है।

सब तरहसे निराश होकर राजाने फिर नगरमें मनादी पिटवाई कि " जो मेरी कन्याको आराम कर देगा उसे अपने राज्यका चतुर्थांश दूँगा और उसके साथ अपनी पुत्रीको भी विवाह दूँगा। " मनादी सुन कर सोमराज उसी समय राजमहल पहुँचा। राजकुमारीको काम-बाणोंसे जर्जरित समझ उसने झूठ-मूठ ही मंत्रके बहाने एक साथिया लिख कर उस पर उसे बैठा दिया और मंत्रे हुए उड़द खिलाने लगा। इसके सिवाय मंत्र सुनानेके बहाने सोमराजने राजकुमारीके कानमें कुछ संकेत भी किया। संकेतको सुनते ही राजकुमारी झटसे सावधान होकर उसी भाँति उठ बैठी, जिस भाँति सर्पका काटा हुआ मंत्रके बलसे जहर उतर जाने पर सचेत हो उठ बैठता है। यह देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसी समय उसने कुमारीका ब्याह सोमराजके साथ करके अपने बचनोंके अनुसार उसे राज्य भी दे दिया।

देखिए, कहाँ तो सोमराजकी दरिद्र दशा! कहाँ विदेशमें घूमते फिरना और कहाँ भाग्योदयसे राज्य-वैभवका प्राप्त होना! पर बात

यह है कि जब जीवोंके पुण्यका उदय आता है तब उनके लिए कोई बात कठिन नहीं रहती।

सोमराजको फिरसे राज्य मिल गया। उसने मुनिके उपदेशको याद कर धर्म पर अपनी श्रद्धाको अटल किया और खूब दान-धर्म द्वारा पुण्य उपार्जन किया।

यह सब धर्मका प्रभाव है। इसलिए जो सुखकी इच्छा करते हैं उन्हें सदा धर्मका पालन करना चाहिए।

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३९ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

नाना करीन्द्रदल-कुंभ विदारके की-
पृथ्वी सुरम्य जिसने गजमोतियोंसे,
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करे न उसपे
तेरे पदाद्रि जिसका शुभ आसरा है॥

प्रभो! जिसने हाथियोंके गण्डस्थलोंको विदीर्ण कर उनसे निकले हुए उज्ज्वल, पर खूनसे भरे हुए-मोतियोंसे पृथ्वीकी शोभाको बढाया और जो अपने शिकार पर छलांग मारनेको तैयार खडा है वह सिंह भी, आपके चरण-पर्वताश्रित जनों पर-जो दुर्भाग्यसे सिंहके पाँवोंमें भी आ गिरे हों, आक्रमण नहीं कर सकता।

देवराजकी कथा।

इस पद्यकी जो भव्य पुरुष शुद्ध भावोंसे श्रद्धा-पूर्वक आराधना करते हैं उनका भयकर सिंह भी कुछ नहीं कर पाता। कथा इस प्रकार है—

श्रीपुर नामका एक अच्छा समृद्धिशाली नगर था। उसमें देवराज नामका एक सेठ रहता था। उसने विद्वानोंके चूडामणि, अपने वीरचंद्र गुरुके पास विधि-पूर्वक भक्तामर-स्तोत्र और उसकी साधनविधिका अभ्यास किया था।

एक दिन देवराज व्यापारकी इच्छासे कुछ लोगोंके साथ संकेतपुर गया। रास्तेमें एक जंगलमें दिन अस्त हो गया। वह जंगल वड़ा भयंकर और हिंस्र जीवोंसे भरा हुआ था। वे लोग उसमें ठहर तो गए, पर उन भयंकर जीवोंके मोरे उनके होश ढीले पड़ गए। इतनेमें उनके सिर पर एक और विपत्ति आकर उपस्थित हो गई। एक वड़ा भारी भयंकर सिंह अपनी विकट गर्जनासे हाथियोंके हृदयोंको हिलाता हुआ और उनके विदीर्ण कपोलोंसे वहते हुए खूनसे लथ-पथ भरा हुआ उन पर झपटा। उसे देख कर देवराजके सब साथी अधमरेकी भाँति हो गये और चीख मार कर वे देवराजके पीछे आ खड़े हुए। उस बेचारेको उन्होंने सिंहके सामने कर दिया। सच है, मृत्यु सबके लिए असह्य होती है।

अपने सामने कालको मुहँ बाए हुए आया देख कर देवराज भी वहुत घवरा उठा, पर उस समय उसे अपने गुरुका सिखाया हुआ मंत्र और उसकी आराधना करनेकी बात याद हो उठी। उसने उसी समय " **भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-** " इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करके मंत्र-प्रभावसे सिंहको अपने वश कर लिया; जिस भाँति योगिराज प्रचण्ड कामको अपने वश कर लेते हैं। इसके बाद सिंहको विनयसे मस्तक झुकाए, और नखोंसे गिरे हुए सुन्दर मोतियोंसे मानों पूजन करते देख कर देवराजने उससे कहा—भव्य ! तुझे जीवोंकी हिंसा करते बहुत समय हो गया, अब तो अपने कल्या-

णके लिए इस घोर पापको छोड कर दया धारण कर। देख, हिंसाका फल बहुत बुरा और नरकमें लेजानेवाला है। वहाँ अनन्त दु.ख है। इसलिए यदि तुझे दु:खोंका डर है और सुखी होनेकी तेरी इच्छा है, तो इस पापके छोडनेके साथ सम्यग्दर्शन ग्रहण कर। उससे तुझे सुख, शान्ति मिलेगी। देवराजके उपदेशका सिंह पर बहुत प्रभाव पडा। उसने हिंसा छोड कर दयाधर्म स्वीकार कर लिया।

इसके बाद देवराज और उसके साथी उस वनसे निकल सकेतपुर पहुँचे। वहाँ बहुत धन कमा कर वे बडे आनन्दके साथ पीछे अपने नगरमें लौट आए। रास्तेकी घटनासे देवराजकी श्रीपुरमें बहुत मान्यता हो गई। अबसे सारे नगरके सेठ—साहूकारोंमें वही प्रधान गिना जाने लगा। राजसभामें भी उसका खूब सत्कार होने लगा। सच है, पुण्यसे धन-दौलत भी प्राप्त होती है और सन्मान भी होने लगता है।

इसके बाद देवराजने अपने नगरमें बडे बडे विशाल जिनमन्दिर बनवाए, उनकी प्रतिष्ठा करवाई, विद्यालय खुलवाए, और गरीबोंकी सहायता की। इससे उसका नाम खूब प्रसिद्ध हो गया और वह सघाधिपति कहलाने लगा।

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम्॥ ४०॥

हिन्दी—पद्यानुवाद।

झालें उठें, चहुँ उडे जलते अँगारे,
दावाग्नि जो प्रलय वह्नि समान भासे,

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥ ४१ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

रक्ताक्ष क्रुद्ध पिककंठ-समान काला,
फुंकार सर्प फणको कर उच्च धावे ।
निःशंक हो जन उसे पगसे उलाँघे,
त्वन्नाम-नागदमनी जिसके हिये हो ॥

नाथ ! जिस मनुष्यके हृदयमें आपकी नामरूपी नागदमनी—सर्पको निस्तेज करनेवाली औषधि है, वह मनुष्य, लाल लाल आँखें किए हुए, गर्विष्ठ कोकिलाके कण्ठ-समान काले, अत्यन्त क्रोधी, और काटनेके लिए सन्मुख आते हुए सर्पको भी निर्भय होकर पाँवों द्वारा लाँघ जाता है। अर्थात् जिस भाँति नागदमनीसे बड़े बड़े जहरीले सर्प निस्तेज हो जाते हैं उसी भाँति पवित्रता और श्रद्धासे आपका नाम-स्मरण करनेवालेको भी सर्पका बिल्कुल भय नहीं रहता।

दृढ़व्रताकी कथा ।

इस पद्यके मंत्रकी आराधनाके फलसे भयंकर सर्प भी एक कोमल फूलकी माला बन जाता है। इसकी कथा इस प्रकार है:—

नर्मदापुरमें एक महेभ नामका सेठ रहता था। उसके एक लड़की थी। उसका नाम दृढ़व्रता था। वह बड़ी सुन्दरी और विदुषी थी। जैनधर्म पर उसकी अटल श्रद्धा थी। उसने श्रावकोंके व्रत ग्रहण कर रक्खे थे।

दशपुर नामका एक और नगर था। उसमें भी एक सेठ रहता था। उसका नाम कर्मण था। उसकी लोकमें बहुत प्रतिष्ठा थी और धन भी उसके पास अटूट था। वह शिवभक्त था।

दृढव्रताके पिताने कर्मणको एक प्रतिष्ठित धनी देख कर अपनी सुशील लड़कीका व्याह उसके साथ कर दिया। नव वधू अपनी सुसराल आई। यहाँ भी वह व्रत-उपवास करने लगी, जिनमन्दिर जाने लगी और जैनशास्त्रोंका स्वाध्याय-मनन-चिन्तवन करने लगी। उसे अपने धर्मके विरुद्ध देख कर उसकी सुसरालके सब लोग उससे द्वेष करने लगे, उसका बात बात पर तिरस्कार—अपमान करने लगे, उसे कुवचन कह कर और उसके सामने जिनधर्मकी निन्दा कर बेहद कष्ट देने लगे। बेचारी दृढव्रताने तब भी उनके विरुद्ध एक अक्षर भी मुँहसे नहीं निकाला। सच है, अधर्मी पुरुष बहुधा करके धर्मात्माओंसे द्वेष ही किया करते है। उनका ऐसा स्वभाव ही होता है। इतने पर भी उन पापियोंको सन्तोष नहीं हुआ जो उनने उसके पतिको भड़का कर—उसे भली-बुरी सुझा कर उसका फिर एक व्याह करवा दिया।

दूसरी नव वधू आई। वह उन्हींके धर्मको पालनेवाली मिथ्यात्विनी और बड़ी चालाक थी। सो आते ही उसने जलती आगमें ऊपरसे और घीकी आहुति डालनेका काम किया। वह अपने स्वामीको सदा दृढव्रताके दोष दिखा कर उसकी निन्दा किया करती थी। एक दिन उसने अपने पतिसे कहा—नाथ! यह बड़ी पापिनी और अभिमानिनी है। देखिए, न तो यह हमारे देव गुरुओंकी पूजा-भक्ति करती है, और उन्हें देख कर चुपचाप रह जाती हो सो भी नहीं, किन्तु बड़ी बुरी तरह उनकी निन्दा करती है, और नगे देवों और गुरुओंकी, जिन्हें देख कर ही लज्जा आती है, पूजा करती है, स्तुति-वन्दना करती है। अपने चंद्रमाके समान निर्मल कुलमें यह बड़ी कुल-कलंकिनी आ गई है। और आप इसे कुछ नहीं कहते, इससे उसका अभिमान और

विनय करने लगी। सच है, धर्मके प्रभावसे दुर्जन भी सज्जन हो जाते हैं और सरल-हृदय मनुष्य अपनेसे छोटे और अपराधीका भी विनय ही करता है।

धर्मपर निश्चल रहनेके कारण पतिकी अकृपा-पात्र दृढव्रता भी उसकी पूर्ण प्रेमपात्र बन गई। धर्म और जिन भगवानकी स्तुतिके प्रभावसे तो मनुष्य संसारमें पूजा जाने लगता है, तब दृढव्रता अपने स्वामीकी प्रेम-पात्र हो गई तो इसमें आश्चर्य क्या?

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
 माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
 त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ४२ ॥
कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
 वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
 स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥ ४३ ॥

हिन्दी–पद्यानुवाद।

घोड़े जहाँ हिनहिने, गरजे गजाली,
 ऐसे महा प्रबल सैन्य धराधिपोंके—
जाते सभी बिखर हैं तव नाम गाए;
 ज्यों अन्धकार, उगते रविके करोंसे॥
बर्छे लगे, बह रहे गज–रक्तके हैं
 तालावसे, विकल हैं तरणार्थ योद्धा,
जीते न जायँ रिपु, संगर बीच ऐसे
 तेरे प्रभो! चरण–सेवक जीतते हैं॥

नाथ! जिस भाँति ऊगते हुए सूर्यकी किरणोंसे अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी भाँति आपके नामका स्मरण करनेसे, उछलते हुए घोडोंकी हिनहिनाहट और हाथियोंकी चिंघाडसे भयकर बलवान राजोकी सेना भी युद्धभूमिसे भाग जाती है।

प्रभो! आपके चरणाश्रित जन दुर्जय शत्रुको पराजित कर उस भयकर युद्धमें जयलाभ करते हैं जिसमें भालोकी अणियोसे विदीर्ण हुए हाथियोंके रक्तके प्रवाहको वेगसे पार करनेके लिए योद्धागण बडे आतुर रहते हैं।

गुणवर्माकी कथा।

उक्त पद्योंकी जो भक्ति और पवित्रताके साथ आराधना करते है, वे युद्धमें जयलाभ करते है। उसकी कथा इस प्रकार है —

मथुराके राजाका नाम रणकेतु था। वे बडे बुद्धिमान, और पराक्रमी योद्धा थे। उनके छोटे भाईका नाम गुणवर्मा था। उनकी जिनधर्मपर बडी श्रद्धा थी। उनका नियम था कि वे निरतर भगवानकी पूजा और भक्तामर-स्तोत्रकी आराधना कर भोजन करते थे। मत्रके प्रभावसे उनका यश और नाम खूब फैल रहा था।

एक दिन रणकेतुकी स्त्रीने उनसे कहा–प्राणनाथ! आपके सुखी रहनेमें ही मेरा सुख है, इस कारण उचित न होने पर भी आपके सुखके लिए मुझे एक बात कहनी पडती है। उसमें मेरा अपराध हो तो क्षमा कीजिएगा।

बात यह है–"आपके भाई बडे तेजस्वी हैं, भाग्यशाली हैं और गुणज्ञ भी हैं। सब राजे-महाराजे उन्हें ही पूछते है। आपकी तो उनके सामने कुछ भी नहीं चलती। इसका भविष्य मुझे यह जान पडता है कि कुछ दिनोंमें वे आपका राज्य छीन कर स्वय उसके अधिकारी बन बैठेंगे। इसलिए इसकी चिन्ता अभीसे करनी उचित है।"

रणकेतुने अपनी स्त्रीके बहकानेमें आकर बेचारे निर्दोष भाईको देश निकाला दे दिया। गुणवर्मा मथुरासे चल कर ऐसे दूर स्थान पर चले गए, जहाँ उन्हें भाईका नाम ही सुनाई न पड़े। अब उन्हें किसी तरहके भयकी संभावना न रही। वे एक पर्वतकी गुफामें रह कर और पर्वतोंके पवित्र फल-फूल खाकर सुखसे जीवन बिताने लगे।

इसके कुछ समय बाद रणकेतु दिग्विजय करनेके लिए निकले। रास्तेमें वही पर्वत पड़ा जहाँ उनके भाई गुणवर्मा रहते थे। रणकेतुने उन्हें देख लिया। देख कर उन्होंने सोचा कि मेरे राज्यका पक्का दुश्मन तो यही है। समय पाकर यह न जाने क्या कर बैठेगा? इसलिए पहले इसे ही जड़मूलसे उखाड़ फेंक देना अच्छा है। और यह जगह भी ऐसी है कि यहाँ जो कुछ किया जायगा उसे कोई भी न जान पायगा। इसके साथ ही रणकेतुने अपनी सेनाको आज्ञा की कि—जाओ इस पर्वतकी गुफाको घेर कर उसे तोपोंसे उड़ादो। रणकेतुकी आज्ञा पाते ही सेनाने पर्वतको घेर कर धड़ाधड़ तोपें छोड़ना जारी कर दिया। गुणवर्मा शान्तिसे बैठे हुए थे। वे अचानक सुनसान पर्वतमें तोपोंकी आवाज सुन कर आश्चर्यमें आ गए। उन्होंने सोचा—संभव है शिकारी लोग शिकार करते होंगे। पर मेरे ऐसे पवित्र स्थानमें जीवोंकी हिंसा उचित नहीं। चल कर देखूँ कि क्या है? वे उठ कर गुफाके दरवाजे पर गए। इतनेमें उन्हें तोपकी भयंकर आवाजके साथ यह कोलाहल सुनाई दिया कि देखो, "गुफामेंसे शत्रु निकल कर भाग न जाय, उसे मारडालो।" गुणवर्मा तब समझे कि भाईको मेरा जीना ही बुरा जान पड़ता है। वे मुझे मार डालना चाहते हैं। अस्तु यदि उनकी ऐसी इच्छा है तो वे उसे पूरी करें। मुझे तो एक बार

मरना ही है। अच्छा है जो मेरी मृत्यु भाईको शान्ति उत्पन्न करके हो। यह कह कर वे भक्तामरकी आराधना करनेको बैठ गए। सब ओरसे अपने चित्तको खींच कर उन्होंने उसे परमात्माके ध्यानमें लगाया। उनकी दृढ़ताके प्रभावसे चक्रेश्वरी आई। उसने भयकर उपद्रव दिखा कर रणकेतुकी सेनाको छिन्न भिन्न कर दिया और वहाँ गाढा अँधेरा कर दिया। रणकेतुकी सेनाको जिधर रास्ता मिला उधर ही वह भाग खडी हुई। अपनी सेनाकी इस प्रकार दुर्दशा देख कर रणकेतु बहुत लज्जित हुआ। अकेले गुणवर्मा द्वारा अपनी सेनाकी इतनी दुर्दशा देख कर रणकेतुने समझा कि अवश्य उसके पास कोई दैवी-बल है। जब वह जगलमें रह कर भी इतना शक्तिशाली है तब धिक्कार है मेरे राज्यको जो जरासे लोभके लिए मै अपने भाईकी जान लेनेके लिए उतारू हो गया! मुझ पापी दुरात्माको हजार बार, अनन्त बार धिक्कार है! अपनी नीचता पर बहुत पश्चात्ताप कर रणकेतु भाईके पास मिलनेको गया। दोनों भाई बडे प्रेमसे मिले। रणकेतुने अपने अपराधकी भाईसे क्षमा कराई। इसके बाद वे अपना मुकुट गुणवर्माके सिर पर रख कर और उन्हें निष्कण्टक राज्य करनेके लिए आशीर्वाद देकर आप वनकी ओर चल दिए और एक परम तपस्वी दिगम्बर मुनिराजके पास जाकर उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण करली।

गुणवर्माको अपने भाईके वियोगका बहुत दु:ख हुआ। उनकी इच्छा नहीं थी कि वे राज्य करें, परतु उस समय सारा राज्य अस्वामिक हो रहा था, इस कारण संभव था कोई शत्रु चढ कर उसे हडप लेता। अतएव लाचार होकर उन्होंने राज्यभार अपनी भुजाओंपर उठाया और शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर वे निष्कण्टक राज्य करने लगे।

ऋषियोंका यह पवित्र उपदेश बड़े ही महत्त्वका है कि "**चरतु सुखार्थी सदा धर्म**" अर्थात् सुख चाहनेवालोंको निरन्तर धर्मका पालन करना चाहिए। यह धर्मका ही प्रभाव था जो अपने आप गुणवर्माको राज्यकी प्राप्ति हो गई।

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥४४॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

हैं काल, नृत्य करते मकरादि जन्तु,
त्यों वाड़वाग्नि अति भीषण सिन्धुमें है,
तूफानमें पड़ गए जिनके जहाज,
वे भी प्रभो! स्मरणसे तव पार होते ॥

नाथ! जिसमें भयंकर पाठीन, पीठ आदि मगरमच्छ क्षुभित हो रहे हैं—मुहँ फाड़े हुए इधर उधर दौड़ रहे हैं, और विकराल वाड़वाग्नि प्रचण्डता धारण किए हुए हैं, उस समुद्रमें भी यात्री लोग, जिनके कि जहाज समुद्रकी अत्यन्त ऊँची उछलती हुई तरंगों द्वारा डँवाडोल हो उठते हैं, आपका स्मरण कर निर्भयताके साथ अपनी यात्रा पूरी करते हैं।

महेभ सेठकी कथा।

इस पद्यके मंत्रकी आराधनासे समुद्रयात्रा निर्विघ्न पूरी हो जाती है—मगरमच्छादि जल-जन्तुओंका कुछ भय नहीं रहता। इसकी कथा इस प्रकार है:—

तामली नामका एक बहुत रमणीय नगर है। उसका तामली नाम इसलिए हुआ कि उसमें तमाल—ताड़के झाड़ बहुत थे। उसमें महेभ नामका एक सेठ रहता था। उसने अपने विद्वान् गुरु चंद्रकीर्ति

मुनिसे भक्तामरस्तोत्र सीखा था। साथमें उसके मन्त्रोंकी आराधना करना भी गुरुने उसे बतला दिया था।

उसके पास बहुत धन होने पर भी उसने सोचा कि.—

स्वापतेयमनाय चेत्सव्व्यय व्येति भूयपि।
सर्वदा भुज्यमानो हि पर्वतोपि परिक्षयी॥

बहुत धन होने पर भी आमदनी न हो और खर्च बराबर जारी रहे, तो वह एक न एक दिन अवश्य नष्ट हो जाता है। विशाल पर्वतको थोडा थोडा भी प्रतिदिन खोदते रहनेसे एक न एक दिन उसका अत आ ही जाता है। अत धनके बढानेका अवश्य यत्न करना चाहिए। यह विचार कर वह धन कमानेकी इच्छासे मणि-माणिक आदि रत्नोसे परिपूर्ण सिंहलद्वीपमें पहुँचा। वहाँ उसने बहुत धन कमाया। उसे वहाँ रहते रहते बहुत दिन बीत गए। एक बार उसकी इच्छा अपने देशमें लौट आनेकी हुई। वह अपना सब धन नाव पर लाद कर वहाँसे चला। रास्तेमें एक जगह नाव अटक गई। वह किसी देवीका स्थान था। नावको अटकी देख कर मॉझीने कहा—सेठ साहब! यहाँ एक देवी रहती है। उसने नाव अटका दी है। वह पशुकी बलि चाहती है। महेभ जिनधर्मका भक्त था। अत वह जीवकी बलि कैसे दे सकता था। उसने नाव चलानेके लिए बहुत प्रयत्न किया, पर वह तिलभर भी अपने स्थानसे नहीं टसी। तब उसने भक्तामर-स्तोत्रका जपना शुरू किया। उसके प्रभावसे उस समुद्राधिवासिनी विकटाक्षी देवीकी सब शक्तियाँ ढीली पड गईं। देवीने प्रत्यक्ष होकर महेभसे वर मॉगनेको कहा। महेभने कहा—मुझे किसी वस्तुकी जरूरत नहीं है, परतु इतनी तुमसे प्रार्थना है कि आजसे जीवोंकी हिंसा करना छोड कर तुम दयाधर्म स्वीकार करो।

बड़े अचम्भेमें पड़ गया। उसे अनुसंधान करनेसे अपनी सोतेली माकी सब बातें ज्ञात हो गईं। उसने फिर उज्जयिनीमें एक क्षणभर भी रहना उचित न समझा और किसीसे कुछ न कह सुन कर वह वहाँसे चल दिया। धीरे धीरे वह हस्तिनापुर जा पहुँचा।

उस समय हस्तिनापुरके राजा मानगिरि थे। वे बड़े गर्विष्ठ थे। सबको बड़ी तुच्छ दृष्टिसे देखते थे। उनकी रानीका नाम मानवती था। उसके कलावती नामकी एक पुत्री थी।

एक दिन मानगिरि बैठे बैठे अपनी पुत्रीके साथ हँसी-विनोद कर रहे थे। उन्होंने हँसी हँसीमें कलावतीसे पूछा—पुत्री! अच्छा कह तो तेरा सुख मेरे अधीन है या कर्मोंके ? और तू मुझसे सुखकी आशा रखती है या कर्मोंसे ?

कलावतीने निडर होकर कहा—पिताजी! मनुष्य कर्मोंके सामने क्या कर सकता है ? वह सब कुछ प्रयत्न करता है, कोशिशें करता है, पर होता वही है जो कर्म चाहते हैं। कर्म निरंकुश हैं। उनके सामने किसीकी नहीं चलती। सबको उनसे हार माननी पड़ती है। कर्मोंकी शक्तिसे ही यह जीव स्वर्ग-नरकमें जाता है, मनुष्य तथा पशु होता है, तब कौन ऐसा बली है जो कर्मोंको दबा सकता है ?

पिताजी! बहुतसे लोग कहा करते हैं कि ईश्वर संसारका कर्त्ता है और कर्म कुछ वस्तु नहीं है। पर ऐसा कहनेवालोंसे मैं पूछती हूँ कि जो ईश्वर संसारका कर्त्ता है, उसके शरीर है या नहीं ? यदि शरीर है, तब तो वह और हम एकहीसे हुए। इस हालतमें जैसे हम प्रत्येक कामको क्रमवार करते हैं वैसे ही उसे भी करना चाहिए। तब मैं पूछती हूँ कि सबसे पहले ईश्वरने क्या बनाया ? और यदि क्रम-क्रमसे उसे

कार्योंका कर्ता न माना जाय तो यह भी सभव नहीं कि शरीरधारी एक साथ अनेक कार्योंको कर सके।

कदाचित् कहो कि वह अशरीरी होकर ही सब ससारका कर्त्ता है। सो यह भी केवल भ्रममात्र है। क्योंकि शरीरके बिना कोई मूर्तिक कार्य कभी नहीं बन सकते। जिस भाँति आकाशसे घट।

हाँ एक बात और मै पूछती हूँ कि ईश्वर जब ससारको बनाता है तब वह किसीकी प्रतिमूर्ति देख कर बनाता है या बिना देखे ही? यदि देख कर बनाता है तब तो ससार अनादि ही ठहरेगा। क्योंकि जब जब वह उसे बनायगा तब तब उसकी प्रतिमूर्तिको देख कर ही बनायगा। और यदि बिना देखे ही बनाता है तो आकाशके फूल और गधेके सींग भी वह क्यों नहीं बना देता?

पिताजी! इन सब बातोंसे जान पड़ता है कि न तो ईश्वर ससारका कर्त्ता है और न मनुष्य ही किसीको सुख दुःख पहुँचा सकता है। इस प्रकार बातों ही बातोंमें कलावतीने अपने पिताकी बातोंका जबाब देकर उन्हें निरुत्तर कर दिया।

मानगिरिको पुत्रीकी इस धृष्टतासे बहुत खेद हुआ। उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि वह मेरे कहनेको नहीं मानेगी। तब उन्होंने उसके अभिमानको नष्ट करने और उसके कर्मवादकी परीक्षा करनेको उज्जयिनीके महारोगी राजकुमार राजहसके साथ, जो अभी हस्तिनापुरमें आया है, कलावतीका व्याह कर दिया। ये नव दम्पति एक वृक्षकी छायामें बैठे बैठे अपने भविष्य-जीवनकी चिन्ता कर रहे थे कि इसी समय एक मुनि इधर आ गये। वे बडे ज्ञानी और तपस्वी थे। नव दम्पतिने भक्ति-भावसे उन्हें नमस्कार कर पवित्र धर्मोपदेश सुना।

राजहंसने उनसे पूछा कि प्रभो ! इस रोगके मारे मैं बड़ा दुःखी हो रहा हूँ, इसलिए इसके नष्ट होनेका कोई उपाय बतलाइए।

मुनिने उसे भक्तामर-स्तोत्र सिखा कर और साथ ही "**उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना**" इस श्लोकका मंत्र बता कर उसकी साधन-विधि भी बतला दी। उनके कहे अनुसार तीनों काल उसका पाठ करते रहनेके कारण धीरे धीरे राजहंसका सब रोग जाता रहा और वह भला-चङ्गा हो गया। दिग्विजयसे लौटे हुए नृपशेखरको जब पुत्रका हाल जान पड़ा तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उसी समय पुत्रके ढूँढ़नेके लिए चारों ओर अपने कर्मचारियोंको भेजा। वे पता लगाते लगाते राजहंसके पास पहुँच गए। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पिताके दुःखका सब हाल राजकुमारसे कह सुनाया। अपने लिए पिताको दुखी सुन कर राजहंसको भी बहुत दुःख हुआ। वह वहाँसे फिर उसी समय रवाना होकर पिताके पास आ-पहुँचा। पुत्रके समागमसे नृपशेखरको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

इसके बाद राजहँसको राज्य देकर और जिनदीक्षा ग्रहण कर नृपशेखर कठोर तप करने लगे।

उधर मानगिरिको भी राजकुमारके स्वस्थ हो जानेकी घटनासे यह निश्चय हो गया कि कर्मवाद भी कमजोर नहीं है। इसके बाद उन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर अपनी पुत्रीसे अपराधकी क्षमा कराई और उसे बड़े प्रेमसे गले लगाया।

जिस स्तोत्रके प्रभावसे जन्म-जरा-मरण आदि भयंकर रोग तक नष्ट हो जाते हैं, उससे साधारण शारीरिक रोगोंका नष्ट होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

धर्मका प्रभाव अक्षुण्ण है। उससे सब कुछ हो सकता है। इसलिए सुखकी इच्छा रखनेवालोंको निरन्तर धर्मका सेवन करते रहना चाहिए।

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

हिन्दी पद्यानुवाद।

सारा शरीर जकड़ा दृढ सॉकलोसे,
बेडी पडे छिल गई जिनकी सुजॉघे,
त्वन्नाम-मत्र जपते जपते उन्होंके,
जल्दी स्वयं झड पडे सब बन्ध बेडी ॥

नाथ! जिनका पॉंवोसे लेकर कठ पर्यन्त सारा शरीर वडी वडी लोहेकी सॉंकलोंसे खूब मजबूत जकडा हुआ है, और कठोर बेडियोंसे जिनकी जॉघें घिस गई हैं, वे लोग भी आपके नामरूपी पवित्र मत्रका निरन्तर स्मरण कर वहुत शीघ्र ऐसे बन्धनके भयसे निवृत्त हो जाते हैं।

रणधीरकी कथा।

इस श्लोककी आराधना द्वारा मनुष्य लोहेकी सॉकल और वेडियोंके कठिन बन्धनसे छुटकारा पा जाते है। इसकी कथा इस प्रकार है —

भारतवर्षमें अजमेर प्रसिद्ध शहर है। जिस समयकी यह कथा है उस समय उसकी शोभा बहुत चढी-बढी थी। उसका ऊँचा प्रकार लकाके प्रकारको लज्जित करता था। उसके गगन-चुम्बि महलोंकी श्रेणियॉ स्वर्गको नीचा दिखाती थीं।

इसके राजाका नाम नरपाल था। उनके एक पुत्र था। उसका नाम रणधीर था। वह बुद्धिमान तो था ही, पर इसके साथ ही प्रचण्ड वीर भी था। शत्रु तो उसका नाम सुनते ही कॉप उठते थे।

रणधीरने न्याय, व्याकरण, साहित्य, मंत्र-शास्त्र आदि सब विषयोंके बहुत अच्छे विद्वान् अपने गुणचंद्र गुरुके पास भक्तामरका अचिन्त्य प्रभाव सुन कर मूल-सहित उसके मंत्रोंके साधनेकी विधि सीख ली।

अजमेरके पास एक पलाशखेट नामका छोटासा पर बहुत रमणीय नगर था। उसके शासनका भार नरपालने अपने रणधीर पुत्रको सौंप रक्खा था। अजमेरका कोट बहुत ऊँचा था—अजेय था। इसलिए योगिनीपुरके बादशाह सुल्तानने अजमेर पर चढ़ाई करना अच्छा न समझ दूसरे उपायसे अजमेर राज्यको अपने वश कर लेनेके लिए पलाशखेट पर चढ़ाई करदी। उस समय रणधीर बेखबर था, इस कारण सुलतान अपनी अपार सेनाके बलसे रणधीरको जीता पकड़ कर उसे अपने शहरमें ले आया और लोहेकी साँकलोंसे बाँध कर उसे उसने कैदखानेमें डलवा दिया।

उस समय रणधीर बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ जिन भगवानकी आराधना और 'आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टिताङ्गा' इस श्लोकके मंत्रका साधन करने लगा। मंत्रके प्रभावसे चक्रेश्वरीने आकर उसके सब बन्धन काट दिए। रणधीर बन्धन-रहित होकर सुलतानके सामने आ खड़ा हुआ। सुलतान उसे मुक्त हुआ देखकर आश्चर्यमें आ गया। उसने उसके छूट आनेमें अपने नौकरोंकी सहायता समझ कर उसे फिर बाँध कर कैदखानेमें डलवा दिया और अबकी बार उसकी रक्षाका खास प्रबंध किया। पर फिर भी उसका सब प्रयत्न निष्फल गया और रणधीर झटसे छूट कर निकल आया। तब सुलतान उसे मंत्र-तंत्रका जानकार समझ कर बड़ा घबराया। उसने रणधीरसे अपने अपराधकी क्षमा कराकर उसका बहुत सन्मान किया और खूब वस्त्राभूषण, धन, रत्नादि वगैरह भेंट देकर उसे उसकी राजधानीमें लौटा दिया।

रणधीर जब अपने नगरमें सकुशल लौट आया तब उसकी प्रजाने उसका बहुत स्वागत किया, सारे शहरको खूब सजाया, और अपने राजाकी प्रसन्नताके लिए खब आनन्द उत्सव मनाया। रणधीर फिर पापियोंके लिए दुर्लभ राज्य-सुख भोगने लगा और अपना समय आनन्दसे बिताने लगा।

जिस स्तोत्रके पाठका इतना महत्त्व है कि जीव कर्मके बन्धनसे भी छूट जाता है उसीके प्रभावसे साधारण लोहे आदिके बन्धनसे मुक्ति पा लेना कोई आश्चर्यकी बात नहीं, किन्तु होना चाहिए पवित्र भावोंके साथ ईश्वराराधन।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥ ४७॥
स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं मान-तुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः॥ ४८॥

हिन्दी पद्यानुवाद।

जो बुद्धिमान इस सुस्तवको पढे है,
होके विभीत उनसे भय भाग जाता—
दावाग्नि-सिन्धु अहिका, रण-रोगका, त्यों—
पञ्चास्य मत्त गजका, सब बन्धनोंका॥
तेरे मनोज्ञ गुणसे स्तवमालिका ये,
गूँथी प्रभो! विविधवर्ण सुपुष्पवाली—
मैंने सभक्ति, जन कण्ठ धरे इसे जो
सो मानतुंग सम प्राप्त करे सुलक्ष्मी॥

नाथ! जो बुद्धिमान् आपके इस स्तोत्रका निरन्तर पाठ किया करते हैं, वे उन्मत्त हाथी, सिंह, दावानल, सर्प, युद्ध, समुद्र, जलोदर और वन्धन आदि द्वारा होनेवाले भयसे शीघ्र ही मुक्त हो जाते हैं—भय ऐसे लोगोंसे डरे हुएकी भाँति नष्ट हो जाता है।

जिनेन्द्र! आपके पवित्र गुणोंसे अथवा प्रसाद, माधुर्य आदि गुणोंसे (मालाके पक्षमें दूसरा अर्थ—सूतके डोरेसे) युक्त और सुन्दर सुन्दर अक्षररूपी विचित्र फूलोंसे (दूसरा अर्थ—अनेक प्रकारके मनोहर और सुगन्धित फूलोंसे) भक्ति-पूर्वक मेरे द्वारा रची हुई (दूसरा अर्थ—गूँथी हुई) इस स्तोत्ररूपी मालाको (दूसरा अर्थ—फूलोंकी मालाको) संसारमें जो पुरुष अपने कंठमें धारण करते हैं, उन उन्नत हृदय-वाले लोगोंको या इस स्तोत्रके वनानेवाले मुझ मानतुंग मुनिको राज-वैभव या स्वर्ग-मोक्ष-रूपी लक्ष्मी अवश होकर प्राप्त होती है। अर्थात् आपके इस पवित्र स्तोत्रका प्रतिदिन श्रद्धा-भक्तिके साथ पाठ करनेवाले लोगोंको धन-सम्पत्ति, राज्य-वैभव, स्वर्ग आदि विभूति विना किसी कष्टके प्राप्त होती है।

ग्रन्थकारका वक्तव्य और प्रशस्ति।

भक्तामर-स्तोत्रका वड़ा भारी माहात्म्य है। उसे बृहस्पति और ब्रह्मा भी लिखने अथवा कहनेको समर्थ नहीं, तब मुझसा अल्पज्ञ कैसे लिख सकता है। इसलिए अल्पज्ञता-वश मेरे लिखनेमें जो भूलें हुई हैं उन्हें बुद्धिमान् और विद्वान् लोग सुधार कर मुझे क्षमा करें।

इस स्तोत्रके प्रत्येक श्लोकमें मंत्रोंके बीजाक्षर बुद्धिमानी और पाण्डित्यके साथ निवेशित किए गए हैं। इसलिए सर्व-साधारणकी इसमें गति होना वहुत ही कठिन, वलिक असंभव है। इसलिए इस विषयको गुरुओं द्वारा ही समझना चाहिए। कारण जैन लोग गुरु-ओंके द्वारा कठिनसे कठिन कामको भी वहुत शीघ्र सिद्ध कर डालते हैं।

सकलचंद्र गुरुके दो शिष्य हैं। एक तो जैस और दूसरा मैं (रायमल्ल)। सो गुरुभाई जैसके प्रेम-वश हो मैंने यह श्रेष्ठ और संक्षिप्त भक्तामर-कथा लिखी है।

इस स्तोत्रके एक एक मन्त्रको सिद्ध करके भी जब बहुतोंने फल प्राप्त किया, तब जो लोग सारे स्तोत्रका पाठ करते हैं, उसके मन्त्रोंका साधन करते हैं, उनके लाभका तो पूछना ही क्या? मन्त्रोंके प्रभावसे जो राज्य, धन, ऐश्वर्य, पुत्र, निरोगता आदि प्राप्त होते हैं वह तो स्तोत्रका आनुषंगिक फल है। जिस भाँति गेहूँकी खेती करनेवालेको गेहूँके साथ साथ भुसी आनुषंगिक—विना किसी कष्टके मिल जाती है, उसी भाँति स्तोत्रका मुख्य फल सर्वज्ञ-पदकी प्राप्ति होकर मोक्षलाभ है और राज्य वैभव, धन-सम्पत्ति आदिका प्राप्त होना उसका आनुषंगिक फल है।

श्रीहूँबड-वंश तिलक मह्य नामके एक अच्छे धनी हो गए हैं। उनकी विदुषी भार्याका नाम चम्पाबाई था। वे बड़ी धर्मात्मा और श्रावक-व्रतकी धारक थीं। उनके जिन-चरण-कमल भ्रमर पुत्र रायमल्लने (मैंने) वादिचन्द्र मुनिकी कृपा लाभ कर यह छोटी, सरल और सुबोध भक्तामर-कथा लिखी है।

ग्रीवापुरमें एक मही नामकी नदी है। उसके किनारे पर चन्द्रप्रभ भगवानका बहुत विशाल मन्दिर है। उसमें कर्मसी नामके एक ब्रह्मचारी रहते हैं। उन्होंने मुझे भक्तामर-कथा लिख देनेको कहा। उन्हींके अनुरोधसे मैंने यह कथा लिखी है।

इस कथाके पूर्ण करनेका संवत् १६६७ और दिन आषाढ सुदी ५ बुधवार है।

मेरी इच्छा है कि भव्यजन इस कथासारके द्वारा लाभ उठा कर अपना कल्याण करें और मेरे इस छोटेसे परिश्रमको सफल करें।

भक्तामरकथा समाप्त।

स्वर्गीय पण्डित हेमराजजीकृत

भाषा-भक्तामर।

दोहा।

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥

चौपाई।

सुरनतमुकुटरतन छवि करैं। अंतर पापतिमिर सब हरैं॥
जिनपद वंदों मनवचकाय। भवजलपतित-उधारनसहाय ॥ १ ॥
श्रुतिपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव॥
शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी वरनों गुनमाल ॥२॥
विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। होय निलज थुति-मनसा कीन॥
जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै। शशिमंडल बालक ही चहै ॥ ३ ॥
गुनसमुद्र तुम गुन अविकार। कहत न सुरगुरु पावै पार॥
प्रलयपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरै को भुज बलवंतु ॥ ४ ॥
सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाववश कछु नहिं डरूं॥
ज्यों मृग निजसुतपालन हेत। मृगपतिसम्मुख जाय अचेत ॥ ५ ॥
मैं शठ सुधी हँसनको धाम। मुझ तुव भक्ति बुलावै राम॥
ज्यों पिक अंबकली-परभाव। मधुरितु मधुर करैं आराव ॥६॥
तुम जस जंपत जिन छिनमाहिं। जनमजनमके पाप नशाहिं॥
ज्यों रवि उगै फटै ततकाल। अलिवत् नील निशातमजाल ॥७॥
तुव प्रभावतैं करहुँ विचार। होसी यह थुति जनमनहार॥
ज्यों जल कमलपत्रपै परै। मुक्ताफलकी दुति विस्तरै ॥ ८ ॥
तुम गुनमहिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुखपोष॥
पापविनाशक है तुम नाम। कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥९॥

नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत। तुमसे तुम गुण वरनत संत॥
जो अधीनको आप समान। करै न सो निन्दित धनवान॥१०॥
इकटक जन तुमको अवलोय। औरविषै रति करै न सोय॥
को करि खीरजलधिजलपान। खारनीर पीवै मतिमान॥११॥
प्रभु तुम वीतराग गुनलीन। जिन परमानु देह तुम कीन॥
है तितने ही ते परमानु। यातै तुमसम रूप न आन॥ १२ ॥
कहँ तुम मुख अनुपम अविकार। सुरनरनागनयनमनहार॥
कहाँ चंद्रमंडल सकलंक। दिनमें ढाकपत्रसम रंक॥ १३ ॥
पूरनचंद्र जोति छविवंत। तुम गुन तीनजगत लंघंत॥
एकनाथ त्रिभुवन आधार। तिन विचरत को करै निवार॥१४॥
जो सुरतियविभ्रम आरंभ। मन न डिग्यौ तुम तौ न अचंभ॥
अचल चलावै प्रलय समीर। मेरुशिखर डगमगै न धीर॥१५॥
धूमरहित वाती गतनेह। परकाशै त्रिभुवन घर येह॥
वातगम्य नाहीं परचंड। अपर दीप तुम बलो अखंड॥ १६ ॥
छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं। जगपरकाशक हो छिनमाहिं॥
घन अनवर्त्त दाह विनिवार। रवितैं अधिक धरो गुनसार॥१७॥
सदा उदित विदलिततममोह। विघटितमेघ राहु अविरोह॥
तुम मुखकमल अपूरव चंद। जगतविकाशी जोति अमंद॥१८॥
निशदिन शशिरविको नहिं काम। तुम मुखचंद हरै तमधाम॥
जो स्वभावतैं उपजे नाज। सजल मेघतैं कौनहु काज॥ १९ ॥
जो सुबोध सोहै तुममाहिं। हरि हर आदिकमें सो नाहिं॥
जो दुति महारतनमें होय। काचखंड पावै नहिं सोय॥ २० ॥

नाराच छन्द ।

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ।
कछू न तोहि देखके जहां तुही विशेखिया,
मनोग चित्तचोर, और भूलहू न देखिया ॥ २१ ॥
अनेक पुत्रवंतिनी नितंविनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनैं,
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥ २२ ॥
पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो,
कहैं मुनीश अंधकारनाशको सुभान हो ।
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके,
न और मोख मोखपंथ देव तोहि टालके ॥ २३ ॥
अनंत नित्य चित्तकी अगम्यरम्य आदि हो,
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ।
महेश कामकेतु जोगईश जोग ज्ञान हो,
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥ २४ ॥
तुही जिनेश वुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं,
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रियै विधानतैं ।
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं,
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥ २५ ॥
नमो करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो,
नमो करूँ सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो ।
नमो करूँ भवाब्धिनीरराशिशोखहेतु हो,
नमो करूँ महेश तोहि मोखपंथ देत हो ॥ २६ ॥

चौपाई।

तुम जिन! पूरनगुनगन भरे। दोष गरवकरि तुम परिहरे॥
और देवगन आश्रय पाय। सुपन न देखे तुम फिर आय॥२७॥
तरुअशोकतर किरण उदार। तुम तन शोभित है अविकार॥
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत। दिनकर दिपै तिमिरनिहनंत॥२८॥
सिंहासन मणिकिरनविचित्र। ता पर कंचनवरन पवित्र॥
तुम तन शोभित किरनविथार। ज्यों उदयाचल रवि तमहार॥२९॥
कुंदपुहुप सितचमर ढरंत। कनकवरन तुम तन सोभंत॥
ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति। झरना झरै नीर उमगांति॥३०॥
ऊँचे रहैं सूर-दुति-लोप। तीन छत्र तुम दिपै अगोप॥
तीन लोककी प्रभुता कहैं। मोती झालरसो छवि लहैं॥ ३१॥
दुंदुभि शब्द गहर गंभीर। चहुँदिशि होय तुम्हारे धीर॥
त्रिभुवनजन शिवसंगम करै। मानो जय जय रव उच्चरै॥३२॥
मंद पवन गंधोदक इष्ट। विविध कल्पतरु पुहुपसुदृष्ट॥
देव करैं विकसित दल सार। मानो द्विजपंकति अवतार॥३३॥
तुम तन भामंडल जिनचंद। सब दुतिवंत करत है मन्द॥
कोटि शंख रवि तेज छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करै अछाय॥३४॥
स्वर्गमोक्षमारग संकेत। परमधरम उपदेशन हेत॥
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सबभाषागर्भित हितसाध॥३५॥

दोहा।

विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुति मिल चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहँ धरैं, तहँ सुर कमल रचाहिं॥ ३६॥
ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय।
सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागन होय॥ ३७॥

षट्पद।

मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं।
तिन सुन शब्द प्रचंड, क्रोध उद्धत अति धारैं॥
कालवरन विकराल, कालवत् सनमुख आवै।
ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावै॥
देखि गयंद न भय करै, तुम पद महिमा लीन।
विपतिरहित संपतिसहित, बरतै भक्त अदीन॥ ३८॥
अतिमदमत्त गयंद, कुम्भथल नखन विदारै।
मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै॥
बांकी दाढ़ विशाल वदनमें रसना लोलै।
भीम भयानकरूप देखि जनथरहर डोलै॥
ऐसे मृगपति पग तलैं, जो नर आयो होय।
शरन गहे तुव चरनकी, बाधा करै न सोय॥ ३९॥
प्रलयपवनकरि उठी आग जो तास पटंतर।
बमैं फुलिंग शिखा, उतंग परजलैं निरंतर॥
जगत समस्त निगल्ल, भस्म करहैगी मानो।
तड़तड़ाट दव अनल, जोर चहुँदिशा उठानो॥
सो इक छिनमें उपशमैं, नामनीर तुम लेत।
होय सरोवर परिणमैं, विकसित कमल समेत॥ ४०॥
कोकिलकंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता।
रक्तनयन फुंकार, मार-विषकन उगलंता॥
फनको ऊँचो करै, वेग ही सनमुख धाया।
तुव जन होय निशंक, देख फनपतिको आया॥

जो चापै निज पांवतै, व्यापै विष न लगार।
नागदमनि तुम नामकी, है जिनके आधार ॥ ४१ ॥

जिस रनमाहिं भयान, शब्द कर रहे तुरंगम।
घनसे गज गरजाहिं, मत्त मानो गिरि जंगम॥
अति कोलाहलमाहिं, वात जहँ नाहिं सुनीजै।
राजनको परचंड, देख वल धीरज छीजै॥

नाथ तिहारे नामतै, सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतै, अंधकार विनशाय ॥ ४२ ॥

मारे जहां गयंद, कुम्भ हथियार विदारे।
उमगे रुधिरप्रवाह, वेग जलसे विस्तारे॥
होयँ तिरन असमर्थ, महाजोधा वल पूरे।
तिस रनमें जिन तोय, भक्त जे है नर सूरे॥

दुर्जय अरिकुल जीतकै, जय पावै निकलंक।
तुम पदपंकज मन वसै, ते नर सदा निशंक ॥ ४३ ॥

नक्र चक्र मगरादि, मच्छकरि भय उपजावै।
जामें वड़वा अग्नि, दाहतैं नीर जलावै॥
पार न पावै जास, थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अति गंभीर, लहरकी गिनति न ताकी॥

सुखसों तिरैं समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं।
लोल कलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं ॥ ४४ ॥

महा जलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट, आदि जो रोग गहे हैं॥
सोचत रहैं उदास, नाहिं जीवनकी आशा।
अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधनिवासा॥

तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निज अंग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिनमैं होयँ अनंग॥ ४५॥

पांव कंठतैं जकर, बांध सांकल अति भारी।
गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं, जिन जांघ विदारी॥
भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय, भूपके वंदीखाने॥

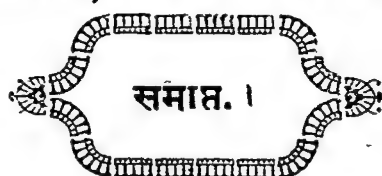
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं।
छिनमें ते सम्पति लहैं, चिंता भय विनसाहिं॥ ४६॥

महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल।
फनपति रन परचंड, नीरनिधि रोग महाबल॥
बन्धन ये भय आठ, डरपकर मानों नाशैं।
तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशैं॥

इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय।
यातैं तुम पद भक्तको, भक्ति सहाई होय॥ ४७॥

यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी।
विविध वर्णमय पुहुप, गूंथ मैं भक्ति बिथारी॥
जे नर पहरैं कंठ, भावना मनमें भावैं।
मानतुंग ते निजाधीन, शिवलछमी पावैं॥

भाषा-भक्तामर कियो, हेमराज हितहेत।
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिवखेत॥ ४८॥



ऋद्धि, मंत्र और साधनविधि ।



१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमोजिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा ।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं ब्लू क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा ।

विधि—पवित्र भावोंके साथ प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धिमन्त्रको जपने और यन्त्रके पास रखनेसे सब प्रकारके उपद्रव नष्ट होते हैं ।

२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लू नमः ।

विधि—काला वस्त्र पहरे, काली माला लिए, काले आसनपर बैठे, पूर्व दिशा की ओर मुख किए, दंडासन बैठकर २१ दिनतक प्रतिदिन १०८ बार अथवा ७ दिनतक प्रतिदिन १००० ऋद्धिमन्त्रका जाप करनेसे शत्रु नष्ट होते हैं, सिर दुखना बन्द होता है और यन्त्र पास रखनेसे नजर बन्द होती है । मन्त्र साधने तक नमकसे होम करना चाहिए और दिनमें एक बार भोजन करना चाहिए ।

३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नमः स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमन्त्रको कमलगट्टेकी माला द्वारा ७ दिनतक प्रतिदिन त्रिकाल १०८ बार जपना चाहिए । होमके लिए दशांगधूप हो और चढानेको गुलाबके फूल हों । चुल्लूमें पानी मन्त्रकर २१ दिन तक मुँहपर छींटनेसे सब प्रसन्न होते हैं और यन्त्र पास रखनेसे शत्रुकी नजर बन्द होती है ।

४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्राजलदेवताभ्यो नमः स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमन्त्रको सफेद मालासे ७ दिनतक प्रतिदिन १००० बार

जाप करना, सफेद फूल चढ़ाना, एक भुक्त करना और पृथ्वीपर सोना। यंत्र पास रखकर और **'भ्यो नमः स्वाहा'** इस मंत्र द्वारा एक एक कंकरीको सात सात वार मंत्रकर इसी तरह इकवीस कंकरियोंको जलमें डालनेसे जालमें मछलियाँ नहीं आती हैं।

५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्रीं क्रौं सर्वसंकटनिवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमोममः स्वाहा।

विधि—पीला वस्त्र पहरकर ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करना, पीले पुष्प चढ़ाना और कुन्दरुकी धूप दहन करना।

जिसकी आँखें दुखती हों उसे सारे दिन भूखा रखकर शामको मंत्र द्वारा २१ वार मंत्रे हुए पतासेको जलमें घोलकर पिलाने या आँखोंपर छींटनेसे दुखती हुई आँखें वन्द होती हैं। कुएमें छिड़कनेसे लाल कीड़े नहीं होते। यंत्र पास रखना चाहिए।

६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थ थ थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्या-प्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—लाल वस्त्र पहरकर २१ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप करने और यंत्र पास रखनेसे विद्या वहुत शीघ्र आती है। विछुड़ा हुआ आ मिलता है। इस विधिमें लाल फूल हों, धूप कुन्दरुकी हो और पृथ्वीपर सोना चाहिए तथा एक भुक्त करना चाहिए।

७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हंणमो वीजबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्वदुरितसंकटक्षुद्रोपद्रवकष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—हरे रंगकी मालासे २१ दिनतक प्रतिदिन १०८ वार जपने और यंत्र गलेमें वांधनेसे सर्पका विष उतर जाता है, और किसी प्रकारका विष लाग नहीं करता। इसके सिवा ऋद्धिमंत्र द्वारा १०८ वार कंकरी मंत्रकर सर्पके सिर पर मारनेसे सर्प कीलित हो जाता है। इस विधिमें यंत्र हरा और धूप लोभानकी हो।

८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणुसारिणं।

मंत्र—ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्र अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । ॐ ह्रीं लक्ष्मणरामचन्द्रदेव्यै नम स्वाहा ।

विधि—अरीठाके बीजकी मालासे २१ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप करने और यन्त्र पास रखनेसे सब प्रकारका अरिष्ट दूर होता है । तथा नमककी ७ डली लेकर एक एकको १०८ बार मंत्र कर किसी पीडित अगको झाडनेसे पीडा मिटती है । इस विधिमें धूप घृत मिले हुए गुगुलकी हो और नमककी डलीको होममें रखना चाहिए ।

९—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं णमो अरिहताण णमो सभिण्णसोदराण ह्रा ह्रीं ह्रू फट् स्वाहा ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्वीं र र ह ह नम स्वाहा ।

विधि—चार ककरीको १०८ आठ बार मन्त्रकर चारों दिशाओंमें फेंकनेसे और यंत्र पास रखनेसे रास्ता कीलित हो जाता है, कोई प्रकारका भय नहीं रहता, चोर चोरी नहीं कर पाता ।

१०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयबुद्धीण ।

मंत्र—जन्मसध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्षधृतावादिनोर्यानाक्षान्ता भावे प्रत्यक्षा बुद्धान्मनो ॐ ह्रा ह्रा ह्रौं ह्र श्रा श्रीं श्रू श्र सिद्धबुद्धकृतार्थो भव भव वषट् सम्पूर्ण स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमत्रकी आराधना तथा यत्र पास रखनेसे कुत्तेका विप उतरता है । और नमककी ७ डली लेकर प्रत्येकको १०८ वार मत्रकर खानेसे कुत्तेके विपका असर नहीं होता । विधान-पीले रगकी मालासे मत्रकी आराधना करनी चाहिए और धूप कुन्दरुकी हो । ७ या १० दिनतक १०८ वार जपना चाहिए ।

११—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीण ।

मत्र—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रा श्रीं कुमतिनिवारिण्यै महामायायै नम स्वाहा ।

विधि—स्नानकरके पवित्र वस्त्र पहरे और दीप, धूप, नैवेद्य, फल लिए प्रसन्न चित्तसे खडे रहकर सफेद मालासे १०८ वार जपने और यत्र पास रखनेसे जिसे बुलानेकी इच्छा हो वह आ सकता है । और लाल मालासे २१ दिनतक प्रतिदिन

१०८ वार जपनेसे भी उपर्युक्त फल होता है। इस विधिमें धूप कुन्दरूकी होनी चाहिए।

१२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वोहिवुद्धीणं।

मंत्र—ॐ आं आं अं अः सर्वराजाप्रजामोहिनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और १०८ वार उक्त मंत्र द्वारा तेल मंत्रकर हाथीको पिलानेसे उसका मद उतर जाता है। विधान-४२ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप लाल मालासे करना चाहिए। धूप दशांग हो।

१३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और ७ कंकरी लेकर प्रत्येकको १०८ वार मंत्र-कर चारों ओर फेंकनेसे चोर चोरी नहीं कर पाते और रास्तेमें किसी प्रकारका भय नहीं रहता। विधान-पीली मालासे ७ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप करना चाहिए। धूप कुन्दरूकी हो। पृथ्वीपर सोना चाहिए और एक भुक्त करना चाहिए।

१४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विवुलमदीणं।

मंत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती महामानसी स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और ७ कंकरी लेकर प्रत्येकको २१ वार मंत्रकर चारों ओर फेंकनेसे व्याधि, शत्रु आदिका भय नष्ट होता है, लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वातरोग नष्ट होता है।

१५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं।

मंत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्रशृंखला मानसी महामानसी स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और मंत्रद्वारा २१ वार तेल मंत्रकर मुखपर लगानेसे राजदरवारमें वोलवाला रहे, सौभाग्य वढ़े और लक्ष्मीकी प्राप्ति हो। विधान-१४ दिनतक प्रतिदिन लाल माला द्वारा १००० जाप करनी चाहिए, दशांग धूप हो और एकभुक्त करना चाहिए।

१६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीण ।

मंत्र—ॐ नम सुमंगला सुसीमा नाम देवी सर्वसमीहितार्थं वज्रश्रृंखलां कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—यन्त्र पास रखने और १०८ वार मन्त्र जपकर राजदरबारमें जानेसे प्रतिपक्षीकी हार होती है, शत्रुका भय नहीं रहता । विधान-९ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप हरे रंगकी माला द्वारा करनी चाहिए । धूप कुन्दरुकी हो ।

१७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठांग महाणिमित्तकुशलाण ।

मन्त्र—ॐ नमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रपीडा जठरपीडा भजय भजय सर्वपीडा सर्वरोगनिवारण कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—यन्त्र पास रखने और अछूता पानी मन्त्रद्वारा २१ वार मन्त्रकर पिलानेसे पेटकी असाध्य पीडा तथा वायुशूल, गोला आदि सभी रोग मिटते हैं । विधान-७ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप सफेद माला द्वारा करनी चाहिए । धूप चन्दन की हो ।

१८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणयड्ढिपत्ताण ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते जयविजय मोह्य मोह्य स्तभय स्तभय स्वाहा ।

विधि—यन्त्र पास रखने और १०८ वार मन्त्र जपनेसे शत्रु अथवा शत्रुकी सेनाका स्तभन होता है । विधान-७ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप लाल मालासे करना चाहिए । धूप दशाग हो और एक वार भोजन करना चाहिए ।

१९—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराण ।

मन्त्र—ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्र यक्ष ह्रीं वषट् नम स्वाहा ।

विधि—यन्त्र पास रखनेसे और मन्त्रको १०८ वार जपनेसे अपने पर प्रयोग किये हुए दूसरेके मन्त्र, विद्या, टोटका, जादू, मूठ आदिका असर नहीं होता, उच्चाटनका भय नहीं रहता ।

२०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाण ।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्र द्वारा १०८ वार पानी मंत्रकर पिलानेसे और यंत्र पास रखनेसे दुखती हुई आँखें अच्छी होती हैं तथा विच्छूका विप उतर जाता है।

३०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं।

मंत्र—ॐ नमो अर्हे मर्हे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रान् स्तंभय स्तंभय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।

फल—उक्त ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे शत्रुका स्तंभन होता है; और राहमें चोर और सिंहका भय नहीं रहता।

३१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं।

मंत्र—ॐ उवसग्गहरं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं विसहरविसणिर्णासिणं मंगल-कल्लाण आवासं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

फल—इस मंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे राजमान्यता होती है; तथा दाद और खाज मिट जाती है।

३२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणवंभचारिणं।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वदोपानिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धि मंत्रद्वारा अविवाहित वालिकाका काता हुआ सूत १०८ वार मंत्रकर उसे गलेमें वांधने और यंत्र पास रखनेसे संग्रहणी आदि पेटकी सव पीड़ाएँ नष्ट होती हैं।

३३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं व्लूं ध्यानसिद्धिपरमयोगीश्वराय नमो नमः स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्र द्वारा अविवाहित वालिकाके काते हुए सूतके २१ वार मंत्रकर वनाए हुए गंडेको वाँधनेसे, झाड़ा देनेसे तथा यंत्रके रखनेसे एकांतरा, तिजारी, ताप आदि सव रोग नष्ट होते हैं। इस विधिमें धूप और घृत मिले हुए गुग्गुलकी धूप होना चाहिए।

३४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं।

मन्त्र—ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ह्सौं पद्मावत्यै देव्यै नमो नमः स्वाहा ।

विधि—कुसूमके रगसे रँगे हुए सूतको १०८ वार ऋद्धिमंत्र द्वारा मन्त्रकर और उसे गुगुलकी धूप देकर बाँधने तथा यन्त्रके पास रखनेसे गर्भका स्तभन होता है—असमयमें गर्भका पतन नहीं होता है ।

३५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताण ।

मन्त्र—ॐ नमो जयविजयापराजित महालक्ष्मी अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृत भव भव वषट् सुधाय स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमन्त्रकी आराधना करने और यन्त्र पास रखनेसे दुर्भिक्ष, चोरी, मरी, मिरगी, राजभय आदि सब नष्ट होते है । इस मन्त्रकी आराधना स्थानकमें करनी चाहिए और यन्त्रका पूजन करना चाहिए ।

३६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिन् आगच्छ आगच्छ आत्ममन्त्रान् आकर्षय आकर्षय आत्ममन्त्रान् रक्ष रक्ष परमन्त्रान् छिन्द छिन्द मम समीहित कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमन्त्रकी आराधनासे और यन्त्र पास रखनेसे सम्पत्तिलाभ होता है । विधान—१२००० जाप लाल पुष्प द्वारा करनी चाहिए और यन्त्रकी पूजन भी साथमें करनी चाहिए।

३७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताण ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं मनोवाञ्छितसिद्ध्यै नमो नमः अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमन्त्र द्वारा २१ वार पानी मन्त्रकर मुँहपर छींटनेसे और यन्त्र पास रखनेसे दुर्जन वश होता है–उसकी जीभका स्तभन होता है ।

३८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीण ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते महानागकुलोच्चाटिनी कालदष्टमृतकोत्थापिनी परमन्त्र-प्रणाशिनी देवि शासनदेवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा ।

फल—ऋद्धिमंत्र जपने और यंत्र पास रखनेसे धनलाभ होता है, और हाथी वशमें होता है।

३९—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचवलीणं।

मंत्र—ॐ नमो एषु वृत्तेषु वर्द्धमान तव भयहरं वृत्तिवर्णा येषु मंत्राः पुनः स्मर्तव्या अतोना परमंत्रनिवेदनाय नमः स्वाहा।

फल—ऋद्धिमंत्र जपने और यंत्र पास रखनेसे सर्प और सिंहका भय नहीं रहता तथा भूली हुई रास्ता मिल जाती है।

४०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं अग्निमुपशमनं शान्ति कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ वार पानी मंत्रकर घरके चारो ओर छींटने और यंत्र पास रखनेसे अग्निका भय मिट जाता है।

४१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं।

मंत्र—ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः जलदेविकमले पद्महदनिवासिनी पद्मोपरिसंस्थिते सिद्धिं देहि मनोवाञ्छितं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धिमंत्रके जपने और यंत्रके पास रखनेसे राजदरबारमें सम्मान होता हैं और झाड़ा देनेसे सर्पका विष उतरता है। कांसेके कटोरेमें १०८ दफे मंत्रकर पानी पिलानेसे विष उतर जाता है।

४२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं।

मंत्र—ॐ नमो णमिऊण विसहर-विसप्पणासन-रोग-शोक-दोष-ग्रह-कप्पदु-मच्चजाई सुहनामगहणसकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा।

फल—ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे युद्धका भय नहीं रहता।

४३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं।

मंत्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासनसेवाकारिणी क्षुद्रोपद्रव-विनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नमः कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धिमन्त्रकी आराधना और यन्त्र-पूजनसे सब प्रकारका भय मिटता है, युद्धमें हथियारकी चोट नहीं लगती तथा राजद्वारा धनलाभ होता है ।

४४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाण ।

मंत्र—ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुंभकरणाय लंकाधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिंतितं कुरु कुरु स्वाहा ।

फल—ऋद्धिमन्त्रका आराधना और यन्त्रके पास रखनेसे आपत्ति मिटती है, समुद्रमें तूफानका भय नहीं होता-समुद्र पार कर लिया जाता है ।

४५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाण ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रवशान्तिकारिणी रोगकष्टज्वरोपशमनं शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमन्त्रकी आराधनासे और यन्त्रके पास रखनेसे बडेसे बडा भय मिटता है, प्रताप प्रकट होता है, रोग नष्ट होता है और उपसर्ग वगैरहका भय नहीं रहता ।

४६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाण ।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठ ठ ज ज क्षां क्षीं क्षूं क्षः क्षय स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमन्त्र जपने और यन्त्र पास रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करनेसे कैदखानेसे छुटकारा होता है, राजा वगैरहका भय नहीं रहता । विधान-प्रतिदिन १०८ बार जाप्य करना चाहिए ।

४७—

ऋद्धि—ॐ अर्हं णमो वड्ढमाणाण ।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ।

विधि—१०८ बार ऋद्धिमन्त्रकी आराधनासे शत्रुपर चढाई करनेवालेको विजयलक्ष्मी प्राप्त होती है, शत्रु वश होता है, शत्रुके शस्त्रोंकी धार बेकाम होजाती है, बन्दूककी गोली, बरछी आदिके घाव नहीं हो पाते ।

४८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूण ।

मंत्र—ॐ ह्रीं अर्हंणमो भगवते महति महावीर वड्ढमाण वुद्धिरिसीणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ नमो वंभचारिणे अट्ठारहसहस्स सीलांगरथधारिणे नमः स्वाहा।

विधि—४९ दिनतक प्रतिदिन १०८ वार जपनेसे और यंत्र पास रखनेसे मनोवाञ्छित कार्यकी सिद्धि होती है, और जिसे अपने अधीन करना हो उसका नाम चिन्तवन करनेसे वह अपने वश होता है।

आवश्यकीय सूचना।

ऊपर लिखी विधियोंमेंसे जिस विधिमें वस्त्र, आसन और मालाका प्रकार नहीं वतलाया गया है उसे नीचे भांति समझ लेवें:—

'**वशीकरण**'— मंत्रके साधनेमें पीला वस्त्र, पीली माला और पीला आसन लेना चाहिए।

'**मारन**'— में काला वस्त्र, काला आसन और काली माला लेना चाहिए।

'**लक्ष्मी-प्राप्ति**' के मंत्र-साधनमें मोतीकी माला और सफेद वस्त्र लेना चाहिए।

'**मोहन**' में मूंगाकी माला और लाल वस्त्र लेना चाहिए।

'**आकर्षण**' में हरा वस्त्र और हरी माला लेना चाहिए।

जिस विधिमें दिशा न वतलाई गई हो उसका विधान करते समय पूरबको मुख करके वैठे।

यंत्र भोजपत्र पर अनारकी कलम द्वारा केशरसे लिखना चाहिए।

प्रकाशक।

॥ यंत्र १ ॥

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-

मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्।

सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-

वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥

॥ यंत्र २ ॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-

दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।

स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः

श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं





॥ यंत्र ३ ॥

वुद्ध्याविनापिविबुधार्चितपादपीठ

ॐ नमोभगवते

स्तोतुंसमुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्

परमतत्त्वार्थभावकार्यसिद्धि

श्री

श्री

मन्य क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ३

॥ यंत्र ४ ॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्क-कान्तान्

कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।

कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं

को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्यां ४

सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि-जिणाणं ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्रा देवताभ्यो नमः स्वाहा ।

क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं

क्लीं

क्लीं



॥ यंत्र ५ ॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश

कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।

नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ५

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजि-

ग्रीं ग्रीं ग्रीं ग्रीं ग्रीं ग्रीं ग्रीं



॥ यंत्र ६ ॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम

त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्

यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति

तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः

ह्रौं ह्रौं ह्रौं ह्रौं ह्रौं ह्रौं ह्रौं

ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं।

ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सः यः यः

ठः ठः ठः सरस्वती भगवती

विद्याप्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।

श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं

ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

क्लीं

॥ यंत्र ७ ॥

त्वत्संस्तवेन भवसन्तति सन्निबद्ध

पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।

आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु

सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ७

नौ नौ नौ नौ नौ नौ नौ

नौ नौ नौ नौ नौ नौ नौ

नौ नौ नौ नौ नौ नौ नौ

नौ नौ नौ नौ नौ नौ नौ

ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं ।

ॐ ह्रीं हंस श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्व

दुरितसंकटक्षुद्रोपद्रवकष्ट

निवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ

क्लीं ब्लूं

॥ यंत्र ८ ॥

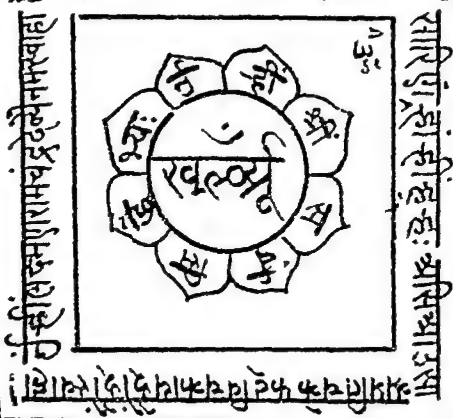
मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-

मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्

चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु

मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ८

यं यं यं यं यं





॥ यंत्र ८ ॥

आस्तांतव स्तवन मस्तसमस्तदोष
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि

॥ यंत्र १० ॥

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ

भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।



तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा

भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति १०



॥ यंत्र ११ ॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीय

नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।

पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः

क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ११

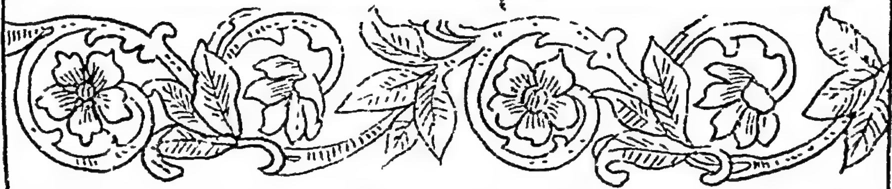
॥ यंत्र १२ ॥

येः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥ १२

ॐ नमो भगवते

ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहि बुद्धीणं ।

ॐ आं आं अं अः सर्वराजा



॥ यंत्र १३ ॥

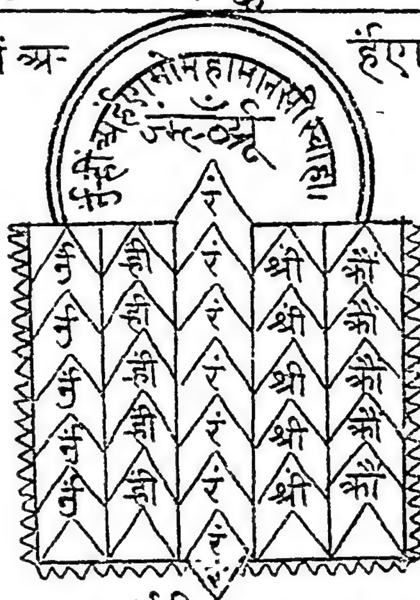
वक्त्र क्ते सुरनरोरगनेत्रहारि-

निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।

बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य

यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

॥ यंत्र १४ ॥


सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् १४
ॐ ह्रीं अर्हं णमो
महा मानसी स्वाहा



॥ यंत्र १५ ॥

चित्र किमत्र यदितेत्रिदशाङ्ग नाभि-

र्नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम् ।

कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन ।

किं मन्दराद्रि शिखरं चलितं कदाचित् १५

ॐ नमो अचिंत्य बल पराक्रमाय सर्वार्थ काम रूपाय

ॐ ह्रीं अर्हं णमो

॥ यंत्र १६ ॥

निर्धूमवर्त्तिरपवर्जित तैल पूरः

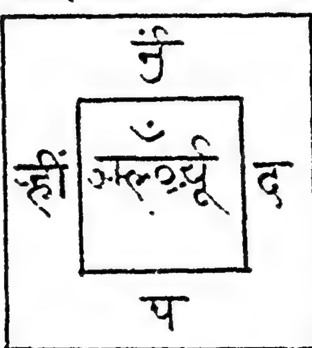
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी करोषि

ॐ ह्रीं अर्हं णमो चन्दसप्पुहीणं

ॐ नमः सुमंगला सुसीमा नाम

ॐ ह्रीं जयाय नमः

ॐ श्रीं विजयाय नमः





॥ यंत्र १७ ॥

नास्त कदाचि दुपयासि न राहु गम्य

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठंग महाणिमित्त कुश-

लाणं ॐ नमो णमो सिकप्प अर्हं मर्हं चंद्रप्रभाय ॐ

ॐ	न	मो	अ
जि	त	श	त्रु
प	रा	ज	यं
कु	रु २	स्वा	हा

क्षुद्रपीडा जठरपीडा भंजय भंजय सर्व

पीडा सर्वरोगनिवारणं कुरु २ स्वाहा।

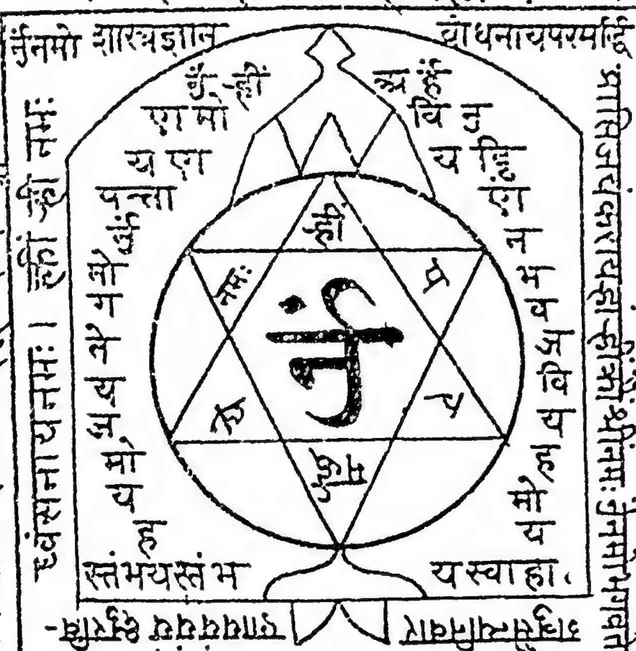
स्पष्टी करोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।

नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभाव.

सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके १७



॥ यंत्र १८ ॥



नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ॥ १८
स्तंभयस्तंभ
यस्वाहा।

॥ यंत्र १८ ॥

ॐ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा

युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ ।

निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके

कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं ।

नं नं नं नं नं नं नं नं

ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

रं रं रं रं रं रं रं रं

क्षं क्षं क्षं क्षं क्षं क्षं क्षं क्षं

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष ह्रीं

नमः स्वाहा ।

॥ यंत्र २० ॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं

ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः

शत्रुभय निवारणाय

ॐ ॐ: नमः स्वाहा

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ ॐ

ॐ ह्रीं भगवते पुत्रार्थ सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ह्रीं नमः

यं



॥ यंत्र २१ ॥

मन्येवर हरि हरादय एव दृष्टा

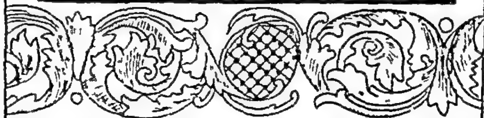
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति

किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः

कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि २१

ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण सम-

सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा



॥ यंत्र २२ ॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्

नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं

प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् २२

ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं ।

ॐ नमो श्री : जंभय जंभय

मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय

श्रव धारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

यं यं यं यं यं यं यं यं यं यं

श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं
श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं

ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं



॥ यंत्र २३ ॥

त्वामा मनन्ति मुनय परम पुमास-

मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।

त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं

नान्य शिव· शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्था २३

ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं

ॐ नमो भगवती जयावती

[illegible]

सौरभ्य कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ	ह्रीं	श्रीं
क्लीं	न	ॐ
ण	म	आ
[illegible]	ठः	ठः

॥ यंत्र २४ ॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं

ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्ग केतुम् ।

योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं

ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः २४

ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं स्थावर

जंगमवायकृतिमंसकलविषं यद्भक्तेः अ-

मृतमिताय ये दृष्टिविषयान् मुनीन्द्रांस्तेवहु-

णाणस्वामी सर्वहितं कुरु २ स्वाहा ॐ +

+ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः असिआउसा ॐ

ॐ स्वाहाः

ह्रीं

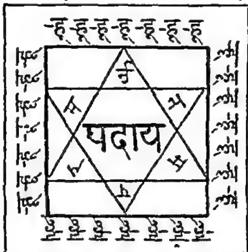
ॐ

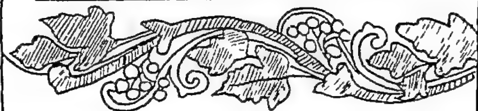
नमः

श्रीं

क्लीं

॥ यंत्र २५ ॥





॥ यंत्र २६ ॥

तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्त्ति हरायनाथ

तुभ्यं नमः क्षितितलामल भूषणाय।

तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय

तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय २६

ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं क्लीं नमो

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रौं ह्रः

परजनशांति व्यवहारे

जयं कुरु कुरु स्वाहा।

श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं

क्ष्रूं क्ष्रूं क्ष्रूं

पं म्रं मं मं

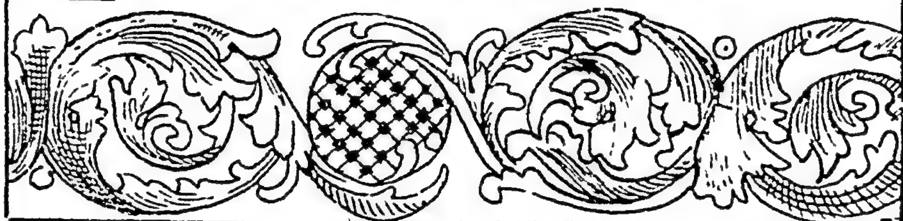
मं मं मं

विं विं विं विं

विं विं विं

यं यं यं यं

यं यं यं



॥ यंत्र २७ ॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-

स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।

दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः

स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्तवाणं नमो

चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेण

हुं फट् स्वाहा ।

ज ज जं ज ज

ॐ	न	मो	भ	ग
[illegible]	खा	य	ह्री	व
[illegible]	[illegible]	[illegible]	श्री	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	स

॥ यंत्र २८ ॥

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-

माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।

स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं

बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

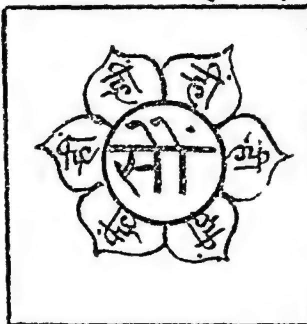
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं ॐ नमो

भगवते जयविजय जृंभय

जृंभय मोहय मोहय सर्वसिद्धि-

संपत्तिसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं





॥ यंत्र २९ ॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे

विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।

बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं

तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥ २८

ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं ॐ णमो णमिऊण पासविसहरफुलिंगमंतोविसहरनामरक्खरमंतो सर्वसिद्धिमीहे इह समरताणमज्जो जागइ कप्पदुमच्चसर्वसिद्धिं नम स्वाहा

अ आ इ ई उ ऊ

ऋ ॠ ऌ ॡ

ए ऐ ओ औ

अं अः

यौं यौं यौं

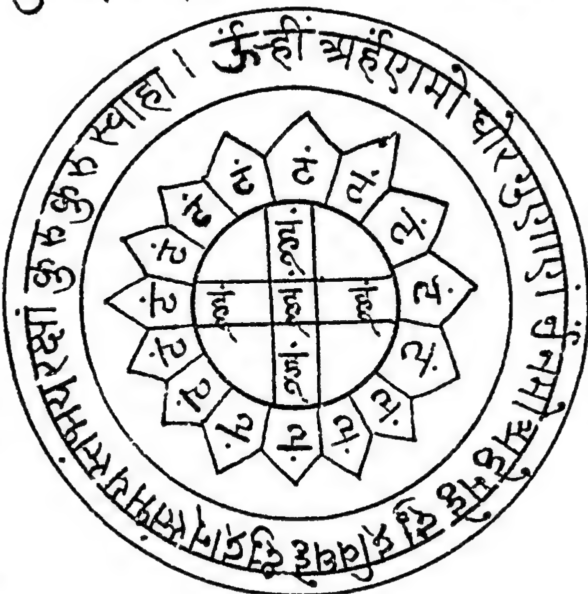
॥ यंत्र ३० ॥

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं

विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।

उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-

मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ३०





॥ यंत्र ३१ ॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्क कान्तः

ॐ ह्रीं स्थित स्थगित भानुकर प्रतापम्।

मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं

प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ३१

ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं ॐ ह्रीं विवस

ग्गहरपास वद्यामिकसमघघुक्षुं

क्षः निसहरविसणिएणसिएणमंगलकल्लाण

श्रावसर ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

ग ग ग ग ग ग

ग ग ग ग ग ग

ग ग ग ग ग ग

ग ग ग ग ग ग

क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं

क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं

क्रौं ह्रीं

॥ यंत्र ३२ ॥

ॐ +

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग-

त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः ।

सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्

खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ३२

ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणबंभचारिणं

ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वदोष-

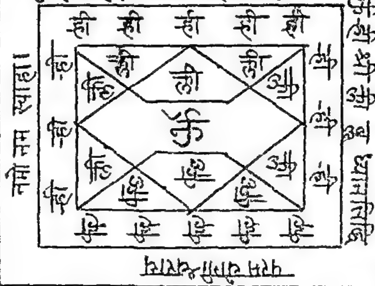
निवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

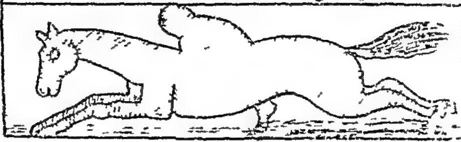
सर्वसिद्धि वृद्धि वांछा कुरु २ स्वाहा

सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं

ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

॥ यंत्र ३३ ॥





॥ यंत्र ३४ ॥

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते

ओंकत्रय द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।

प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या

दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्॥३४॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो रवि ल्लोसहि पत्ताणं।

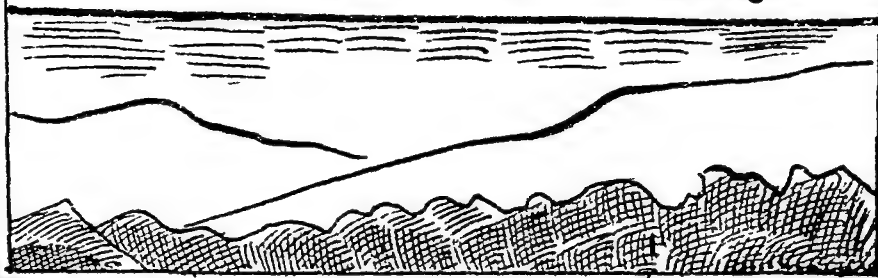
ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ब्लूँ

मनोवांछित कुरु कुरु

नमो नमः स्वाहा

फं फं फं फं फं

ॐ	प	च
न	नमः	य
ह्रीं	ह्रां	म



॥ यंत्र ३५ ॥

+ ह्लो

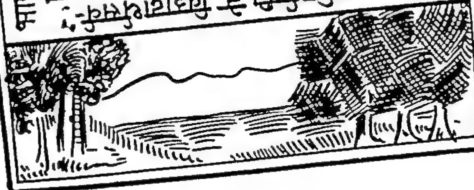
स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः

सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः।



दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-

भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ३५



॥ यंत्र ३६ ॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः

पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ॐ ह्रीं

ॐ	ह्रां	ह्रीं	श्रीं
स	ह्रां	ह्रीं	क्लीं
च	ह्रः	ह्रूं	ह्रूं
स	य	र	ह



॥ यंत्र ३७ ॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र

धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।

याहक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा

ताहक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ३७

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ॐ नमो

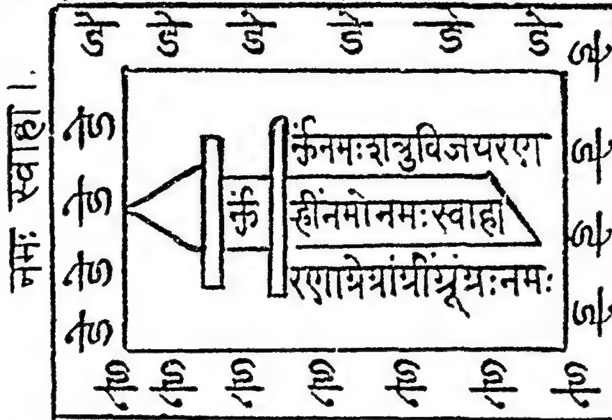
भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ

ह्रीं मनोवांछितसिद्ध्यै नमो नमः

अप्रतिचक्रे ह्रीं ठ ठ स्वाहा।

॥ यंत्र ३८ ॥

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-



॥यंत्र ३९॥

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रम क्रमगत हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ३९

ॐ ह्रीं अर्हंणमो वचबलीणं। ॐ
नमो हुहु वुहेषु वद्धमानतव
भयहर वृत्तिवर्णायेषु मन्त्रा पुन स्मर्तव्या
श्रौं तोणापरमवलीवेदनायनम स्वाहा।

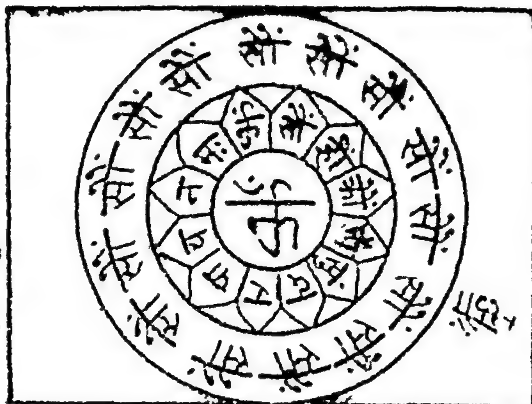
क्रौं क्रौं क्रौं क्रौं

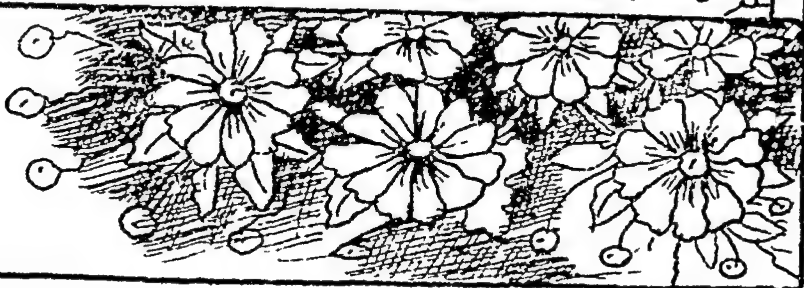
ॐ	न	मो	भ	ग
व	ह्रां	ह्रीं	क्ष्रीं श्रीं	व
ध्व	वि	य	भ	ते

यंत्र ५०

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं

ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीणं





॥ यंत्र ४१॥

ॐ रक्तेक्षण समदकोकिलकण्ठनील
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंक-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं ॐ नमो

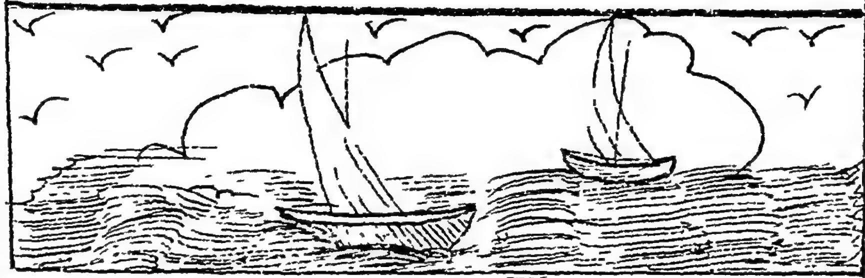
॥ यंत्र ४२ ॥

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ४२

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं ॐ नमो
भगवते गुणविषधरविषप्रणा-
शन रोग शोक दोष ग्रह कप्प दुमच्चजाई
सुं नासेइ सकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा

वं वं वं वं वं

ॐ	ह्रीं	श्रीं	ब
य	न	मः	ल
मा	ॠ	रा	प



॥ यंत्र ४३ ॥

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ४३





॥ यंत्र ४४ ॥

ॐ अम्भोनिधौ क्षुभित भीषणनक्रचक्र-

पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।

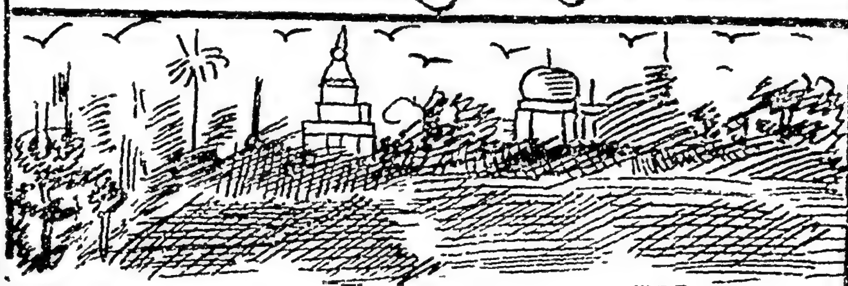
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाणं ॐ नमो

रावणाय विभीषणाय कुंभकरणाय-

मनश्चिंतितं कुरु कुरु स्वाहा।





॥ यंत्र ४५ ॥

नुद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना

शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।

त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः

मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ४५

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाण-

साणं ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव

शांतिकारिणी रोगकष्टज्वरोपशमन

शान्ति कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ	ह्रीं	भ	ग
[illegible]	रा	य	[illegible]
[illegible]	म	च	[illegible]
ष	भी	य	[illegible]

॥ यंत्र ४६ ॥

ॐ आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः। त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॐ

ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ॐ नमो

क्षय: स्वाहा।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं

श्रीं ॐ श्रीं

ॐ ॐ

ॐ ॐ

श्रीं ॐ श्रीं



॥ यंत्र ४७॥

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-

संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्

तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव

यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ।

ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः य क्ष

ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।

भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर

ॐ	न	मो	भ
[illegible]	ह	रा	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

॥ यंत्र ४८ ॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां